

विषयानुक्रमिका

Sl.	शीर्षकम्	लेखकः
	मुख्यसम्पादकीयम्	डॉ. सदानन्द झाः
	प्रकाशकीयम्	डॉ. बिपिनकुमारझाः
1	आलयविज्ञान' का विवेचन- बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में	डॉ. सोनल सिंह
2	सिद्धान्तकौमुद्याः रत्नार्णवटीकायाः समीक्षात्मकः परिचयः	राजेशचन्द्रः पोखरियाः
3	पुराणकाले नारीणां पाणिग्रहणसंस्कारः	डॉ. दीपिका दीक्षितः
4	Study Of Palāśa Plant on Indian Perspective	Dr Ishwara Prasad A
5	भारतीयज्ञानपरम्परायां शिक्षाशास्त्री व्यासः	डॉ. सुशान्तहोता
6	पुराणेषु सर्गः	गौरी पि
7	साहित्यशास्त्रविशा काशिकापठितोदाहरणानां पर्यालोचनम्	डॉ. धर्मेन्द्रदासः
8	स्त्रीशक्तिभिः धर्मप्लोषणम्	कपिलः जानी
9	महर्षि दयानन्द की शिक्षा पद्धति का व्यावहारिक पक्ष : एक दृष्टि	अनामिका
10	भारतीय संस्कृतिनिष्ठ मानवमूल्यः कल आज और कल	डॉ. गीता शुक्ला
11	A light on Śaṭkarma according to Haṭha Yogic texts	Atanu Bandyopadhyay
12	शब्दशास्त्रवतां वृत्तिस्वरूपविचारः	लोकेशकुमारः
13	लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे रसविमर्शः	रबिन्द्रनाथवारः

मुख्यसम्पादकीयम्

शिवशिरसि वसन्ती संविदानन्दनीरा
हृदयकलुषपुञ्जं प्रक्षिपन्ती विद्वेष्टा
सघनतमसि दिव्यं ज्योतिशतोकयन्ती
प्रसरतु भुविभ्रव्या भारती कापि दिव्या॥

अये मान्यमान्याः संस्कृतसेवनतत्पराः ब्रूथिथन्नथाविभेदनदक्षाः अनारतसुरभारतीप्रचार-प्रसारे बद्धपरिकराः
पण्डितप्रवराः संस्कृतानुरागिणः शास्त्रजिज्ञासवथः

प्रपञ्चस्य सर्वप्रथमान्तर्जालीयत्रैमासिकसंस्कृतशोधपत्रिकायाः जाह्नव्याः सप्तवत्वारिशतवत्वारिशत-संयुक्ताङ्कमिमं
विविधबुधवन्दितवरणानां श्रीमतां तत्रभवतां संस्कृतानुरागिणां पाठकानां करकमलयोः सादरं समर्पयन्
अमन्दमानन्दमनुभवामि।

पत्रिका प्रारम्भसमयादेव संस्कृतप्रचारप्रसाय रथापितपरम्परानुसारं प्रत्यङ्कं अस्याः लोकार्पणकार्यक्रमः
समर्जलि इतः पूर्वं अमेरिका-अटलाण्टानगर्यादिष्वपि प्रख्यातविद्वद्भिः लोकार्पणकार्यक्रमः सम्पन्नः। एतत्परम्परयां
अरमदादीनां परमसौभान्यवशादेव हिमाचलप्रदेशसर्वकारस्य शिक्षामंत्रिवर्यैः स्वनामधन्यैः
संस्कृतप्रचारप्रसायबद्धपरिकरैः श्रीमद्भिः गोविन्दसिंहठाकुरमहोदयैः प्राशासनिककार्यव्यस्ततयामपि सत्यां
पत्रिकालोकार्पणाय स्वकीयाप्रीत्यतिशयानुमतिः प्रदत्तेति। एतदर्थं तान् मन्त्रिवरान् सादरं स्तौति। कार्तस्त्रं च प्रकटयति
जाह्नवीपरिवारः। वस्तुतः पत्रिकेयं पण्डितानां मनोविनोदायानुसन्धितसूनामुपकाराय सुरभारतीप्रवाराय शास्त्रपरम्परयाः
संरक्षणाय दुर्लभपाण्डुलिपिप्रकाशनाय अनारतं बद्धपरिकरा विद्यते।

एताहं सुरभारत्याः उत्कर्षकालः यतोहि भारतसर्वकारस्य यशस्विनः प्रधानमन्त्रिपदममलङ्कुर्यन्तरतत्र
भवन्तः नरेन्द्रदामोदरदामोदीमहोदयाः सुरभारतीसेवनतत्पराः सन्तः केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयत्रयस्य कुलपतीनां
कायेन मनसावाचा अनुदानेन च महत्साहाय्यं कुर्वन्ति यच्च उत्कर्षमहोत्सवावसरे लेखकैरप्यनुभूतम्। संस्कृतजगति
मौलिभूताः केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतयः प्रो. श्री निवास वरखेड़ी महाभागाः अहर्निशं संस्कृतसेवाप्रतिनः
सन्तीति संस्कृतविद्वद्भ्यो महते मोदाय कल्पितम्।

प्रस्तुतङ्के त्रयोदश-आलेखाः पक्षपातशून्यमनसा वयनसमित्या मत्सन्नियौ सम्प्रेषिताः सर्वेपि महत्त्वपूर्णाः येषु
'साहित्यशास्त्रविशा काशिकापठितोदाहरणानां पर्यालोचनम्, शब्दशास्त्रवतां वृत्तिस्वरूपविचारः, सिद्धान्तकौमुद्याः
रत्नार्णवटीकायाः समीक्षात्मकः परिचयः, आलयविज्ञान' का विवेचन- बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में, भारतीयज्ञानपरम्परायां
शिक्षाशास्त्री व्यासः, Study Of Palāśa Plant on Indian Perspective, महर्षि दयानन्द की शिक्षा पद्धति का व्यावहारिक
पक्ष : एक दृष्टि' इत्यादयः शोधातेखाः, पण्डितानां मनांसि नियतं कवलीकरिष्यन्ति इति मे दृढीयान् विश्वासः।

विभिन्नप्रान्तेभ्यः प्रेषितपण्डितप्रवराणां शोधालेखान् प्राप्य ह्यप्यति मे मनः। एतेषां विद्वद्दशगामाचार्याणां
लेखसाहाय्येनेयं पत्रिका सारस्वतरङ्गस्थले सन्ततं नृत्यमाना वर्तते। एतदर्थं सश्रद्धं कार्त्तव्यं प्रकटयति पत्रिकापरिवारः।
पत्रिकायाः अस्याः साफल्ये नैकविधं साहाय्यं दत्तवद्भ्यः आसुषमद्भ्यः
चेन्नैस्थलतोयलामहाविद्यालयीयसंस्कृतविभागाध्यक्षेभ्यः डा. सुमन आचार्यमहोदयेभ्यः अपि च डा. मीनाक्षी जोशी, डा.
बिन्दुकुमार, डा. प्रीतीवर्मा, डा. रामसेवक झा महोदयेभ्यः साधुवादान् विधारये।

पत्रिकायाः साफल्यवैफल्ययोर्निर्धारणं विद्वांसः संस्कृतानुसंगिणः पाठका एव विधारयन्ति।

श्रुतिध्वनि मनोहरा मधुस्मा शुभापावनी
स्मृताप्यतनुतापहत् समवगाह सौख्यप्रदा ।
निषेव्यपदङ्कजा सुकृतिमूर्तिमन्याऽमला
समस्तजगतीतले प्रवहतादियं जाह्ववी ॥

विदुषाचरणतन्त्रिकः,

सदानन्दः झोपाख्यः,

जे.एन.बी. लगमाराधार्श संस्कृतमहाविद्यालयीयप्राचार्यः



प्रकाशकीयम्

भारतीयस्वातन्त्र्यस्य फचसप्ततिवर्षमहोत्सवस्य समाचरणं सोल्लासं दृश्यते। प्रत्येकरिम्नं गृहे त्रिवर्णध्वजः
भारतीयसफलतोकतन्त्रस्य जयमुद्घोषयन् विश्वमण्डले दरीदृश्यते। भारतवर्षस्य संस्कृतिः सर्वथा सर्वदा विश्वजगन्
एकरिम्नं सूत्रे निबध्नाति एतस्मात् कारणादेव वैदेशिका अपि भारतं प्रतिस्वीयं भावकुरमाञ्जतिं समर्पयन्ति।

भारतीयसंस्कृतेः मुकुटीभूता भवति अरमदीया संस्कृतभाषा। अद्यत्वे विश्वे रिम्नं विश्वे संस्कृतसमाहर्षतं
सोल्लासमावर्षते। संस्कृतसमाहाचरणस्य मूलहेतुर्भवति संस्कृतस्य भारतीयसंस्कृतेः प्रचारप्रसारः आविष्कृतं यथा
स्यादिति।

इयं जाह्ववीपत्रिका अरिम्नं सन्दर्भे नितरां स्वकीयां भूमिकां निर्वहन्ती अस्ति। संस्कृते यत् ज्ञानविज्ञानं वर्तते तेषां
विश्वपटले समुपस्थापनं यथा स्यात् तथा निरन्तरं कार्यं करोति। अरिम्नं क्रमे एव अद्यत्वे फचदशतालिकापर्यन्तम्
आयोज्यमाने संस्कृतसमाहोत्सवे एकामान्तराष्ट्रियविचारगोष्ठीं समायोजयति तत्र सप्तदिवसात्मके कार्यक्रमे 53
संस्थानां, 12 भारतीयराज्यानां 06 देशानां, 14 भारतीयभाषाणां, 07 वैदेशिकभाषाणां, 119 विदुषां सहभागिता वर्तते इति
महत्प्रमोदास्पदम्।

जाह्ववी-ई-शोधपत्रिका निरन्तरं गुणवतायुतशोधपत्राणां प्रकाशनं कुर्वन्ती अरिम्नन् इकेऽपि आहत्य
त्रयोदशर्दशविद्यावदेव चतुर्दशानामालेखानां चयनं विधाय प्रकाशनं करोति। अत्र ये केचन् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण
सहायकाः तेषां वाक्कायकुसुमैः कार्त्तव्यं विभर्ति।

श्रेमत्कः

डा. बिपिनकुमारसाः



आलयविज्ञान' का विवेचन- बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में डॉ. सोनल सिंह'

प्रमुखशब्दा- विज्ञप्ति, अविद्या,प्रतिसन्धि,निवृत्ति, सोपधिषेय

शोधसार- भगवान के द्वारा उपदेशित धर्म वर्तमान समय में हीनयान तथा महायान के रूप में प्रचलित हैं तथा सम्प्रदाय भेद से चार हैं। वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार व माध्यमिका योगाचार ही विज्ञानवाद तथा माध्यमिक /शून्यवाद के नाम से विख्यात हैं। विज्ञानवाद सम्प्रदाय का मुख्य वैशिष्ट्य आलयविज्ञान के माध्यम से संसार के प्रवृत्ति तथा निवृत्ति चक्र के बन्ध से निवृत्त होना है। इस प्रकार आलयविज्ञान योगाचार का वैशिष्ट्य है, या कह सकते हैं कि योगाचार मत कि एक विशेष देन है। यह एक ऐसा तत्त्व है, जिसमें जगत के समस्त धर्मों के बीज निहित रहते हैं, उत्पन्न होते हैं तथा विलीन हो जाते हैं।

अर्थ आलय शब्द का अर्थ है 'स्थान' या आश्रय। सभी धर्म इसमें कार्य रूप से आलीन होते हैं अर्थात् उपनिबद्ध होते हैं, इस कारण इस विज्ञान' को आलय कहते हैं।¹ इस तरह विज्ञान में जन्म जन्मान्तर के पुण्य/पापादि का संग्रह होता है, वे विपाक' विज्ञान होते हैं। आलयविज्ञान सभी धर्मों का आश्रय अनादिकालिक धातु है उसी के होने पर संसार की गति अथवा निर्वाण की उपलब्धि होती है।

शेरवादी/ हीनयान आगम- पालि त्रिपिटकों में आलय विज्ञान का उल्लेख प्राप्त है। अभिधम्मत्थसंगहो में इसे 'भवङ्ग' के नाम से व्याख्यायित किया जाता है। भवङ्गचित को मनोद्वार कहते हैं।² वही महासांधिकों में, मूलविज्ञान के नाम से जानते हैं। इस प्रकार 'आलयविज्ञान' की सत्ता नवीन नहीं है, त्रिपिटकों में भी इसके लक्षण आसानी से मिल जाते हैं। यहाँ तक कि आलय शब्द महावग्गपालि, मूलपण्णासपालि, सगाथवग्ग, चतुक्कनिपातपालि तथा विनय के महावग्ग में वर्णित है, जिसका विवरण है- "आलयरामा भिवस्सवे, पूजा आलयरता, आलयसमुदिता, सा तथागततेन अनालये धम्मो देसियमाने सुस्सूसति सोत्तं ओदहति अन्ना चित्तं उपहपेति।"³ "तथागत के लोक में उपासक का यह उद्देश्य है कि वे 'आलय' के प्रति स्नेह रखनेवाले जीवों का उसके त्याग का उपदेश करते हैं, जिसे सुनकर और तदनुकूल आवरण करके वे अपना लक्ष्य अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर सकें।

महायान आगम- महायान साहित्य में आलय विज्ञान का विस्तृत विवरण लंकावतार सूत्र में प्राप्त है। यह ग्रन्थ नौ वैपूल्य सूत्रों में पूजनीय है। लंकावतार सूत्र में आगमानुयायी विज्ञानवादियों के उक्त पक्ष को समझाते हुए कहा गया है

¹ PDF, Central Sanskrit University, Lucknow.

² आलयः स्थानमिति पर्यायो, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि-प्रकरणद्वयम्, सम्पादक रामशंकरत्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 1992 पृ 150

³ विज्ञानतीति विज्ञानम्, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, सं सं वि. वि. 1992, पृ 151

⁴ अथवाऽऽतीत्यन्ते उपनिबन्धन्तेऽस्मिन् सर्वधर्मबीजाश्रयत्वाद् सर्वबीजकम् विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि-प्रकरणद्वयम्, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय-वाराणसी, 1992 पृ 151

⁵ फल

⁶ मनोद्वारं पन भवङ्गं ति पवचवति।अभिधम्मत्थसंगहो प्रथम भाग पृ. सं सं वि. वि।1991, 240

⁷ आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसमुदिताय...ब्रह्मयाचनकथा,महापदानसुत्तं दीधनिकाय दुतीयो भागो, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्ध भारती

ग्रन्थमाला, 2009 पृ 294

⁸ तुल्यतथागत अच्छरियसुत्तं, भयवग्गो, चतुक्कनिपातपालि, अंगुत्तरनिकाय पृ

⁹ सद्धर्मपुण्डरीक, लङ्कावतार सुवर्णप्रभा, गण्डव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज, दशभूमिश्च एवं अष्टसाहसिकाप्रज्ञापारमितासूत्र।

किं गर्भस्तथागतानां हि विज्ञानैः समुत्पद्यते।¹⁰ सभी तथागत गर्भों का सप्तविध विज्ञानों के द्वारा योग होता है। आलय विज्ञान के साथ विलष्ट मनोविज्ञान पडविद्या प्रवृत्ति विज्ञान प्रवृत्त होते हैं, कुल मिलाकर ये सात विज्ञान तथागतगर्भ से युक्त होते हैं तथागत गर्भ ही आलयविज्ञान है।

महायान के अनुसार, सभी सत्त्व 'तथागतगर्भ' होते हैं। महायानियों का विश्वास है कि जगत् के अक्षेप संपूर्ण सत्त्वों में, बुद्ध बीज विद्यमान है अर्थात् सब में तथागत होने की संभावनायें विद्यमान हैं। 'तथा' के बीज विद्यमान हैं, इसलिए सभी प्राणी तथागर्भ हैं। महायानी यह मानते हैं कि सभी प्राणी एक न एक दिन बुद्धत्व अवश्य ही पायेंगे। जो तथागतगर्भ है, वही आलयविज्ञान है।

लंकावतारसूत्र में इस बात को समझाते हुए कहा गया है। यदि साधक चाहे तो वह महायान में प्रवेश तकर विज्ञप्तिमात्रता की स्थिति तक पहुँच सकता है। यह विज्ञप्तिमात्रता केवल बुद्धचित्तों को, बुद्धत्व प्राप्त सत्त्वों के चित्त का आलम्बन होती है अर्थात् जब तक बुद्धत्व प्राप्ति न हो जाए तब तक आलयविज्ञान की धारा चलती रहती है किन्तु जिस क्षण बुद्धत्व प्राप्ति हो जाती है आलयविज्ञान की धारा उलट जाती है और इसे ही आश्रय परवृत्ति कहते हैं। ऐसे में आलय विज्ञान समताज्ञान तथा आठ विज्ञानों का उल्लेख लंकावतारसूत्र में स्पष्ट रूप से मिलता है।¹¹ आलयविज्ञान में एक प्रकार का अनास्रवबीज स्थित रहता है। जिसके विकसित होते ही 'तथागतत्व' नामक पदार्थ की प्राप्ति होती है। तथागत का बीज वासना जिस पर आश्रित रहता है, वही तथागतगर्भ है। इस उक्ति के अनुसार आलयविज्ञान ही तथागतगर्भ है।¹²

पुनः "आर्य सन्धिनिर्माचन सूत्र" के 'विशालमतिपरिप्लव्ण' नामक फचम परिच्छेद में आलयविज्ञान का स्वरूप इस प्रकार मिलता है।

आदानविज्ञानगर्भसूक्ष्मो ओषो यथा वर्तति सर्वबीजो।

बालान एषो मयि न प्रकाशितो मा हव आत्मा परिकल्पयेयुः।।¹³

अर्थात्- आलयविज्ञान ही आदान विज्ञान है, यह पाँच उपादान स्कन्धों को ग्रहण करता है, यह गर्भीर है, सूक्ष्म है, क्योंकि यह श्रावक जन एवं प्रत्येकबुद्ध जन का विषय नहीं है, समस्त धर्मों के बीज संस्कार के वासनाओं का यही आश्रय है, इस कारण इसे सर्वबीजक भी कहते हैं। जिस प्रकार सागर में आये हुए तृण एवं काष्ठ को तरेगे निरन्तर बहा ले जाती हैं, उसी प्रकार आलयविज्ञान समस्त धर्मों के बीजों को स्वयं में रखकर निरन्तर प्रवाहित करता रहता है।

भगवान कहते हैं कि मैंने इसे पृथग्जनों के समुद्र इत्यादि नहीं प्रकाशित किया, क्योंकि वे आत्मा समझकर मोहित हो आत्मवादी बन जायेंगे।

अभिधर्मसूत्र में भी आलयविज्ञान को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि-

अनादिकालिको धातुः सर्वधर्मसमाश्रयः।

तरिम्न सति गतिः सर्वाः निर्वाणाधिगमोऽपि वा।।¹⁴

¹⁰ लंकावतारसूत्र, स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती मन्थमाला 2006- पृ 106

¹¹ विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि पं रामशंकर त्रिपाठी सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि० वि० 1993 सारांश, पृ- 21

¹² विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि पं रामशंकर त्रिपाठी सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि० वि० 1993 सारांश, पृ- 22

¹³ आदानविज्ञानगर्भसूक्ष्मो ओषो यथा --विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, सारांश, पृ- 19, बौद्धदर्शन प्रस्थान पृ- 157, मूल आर्यसन्धिनिर्माचनसूत्र

¹⁴ अनादिकालिको धातुः सर्वधर्मसमाश्रयः, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि सारांश पृ- 20

यह जो आलय विज्ञान है अनादि है अर्थात् न जाने कब से चित के साथ लगा हुआ है। यद्यपि यह स्वयं चित ही है, अर्थात् सभी विज्ञान चित ही हैं। यह सभी धर्मों का संश्रय है, आश्रय है अर्थात् इसमें अनादिकाल से किये गये कर्मों की वासनाएं सूक्ष्म रूप से संस्कार के रूप में विद्यमान रहती हैं कहते हैं कि उसके रहने पर ही सभी प्रकार की तौकिक और लोकोत्तर गतियां सम्भव हो पाती हैं, यहाँ तक की निर्वाण की प्राप्ति पर्यन्त ये बना रहता है। 'सोपधिषेण निर्वाण के अनन्तर विलप्त मनोविज्ञान और पडविद्या प्रवृत्तिविज्ञान सर्वज्ञता ज्ञान और मार्गज्ञता ज्ञान में परिणत हो जाते हैं। इसी अवस्था को बुद्धत्व प्राप्ति कहते हैं इसी को बोधि कहते हैं। इसी को प्राप्त करने के लिए सत्त्व जन्म जन्मान्तर तक प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार महायान सूत्रों में आलय विज्ञान की विशद व्याख्या मिलती है।

भेद- योगाचार या विज्ञानवादी सम्प्रदाय के दो अवान्तर भेद हुये- युक्त्यनुयायी विज्ञानवादी और आगमानुयायी विज्ञानवादी। आगमानुयायी विज्ञानवादी के आचार्य आर्य असङ्ग, वसुबन्धु तथा युक्त्यनुयायी सम्प्रदाय के आचार्य दिङ्नाम धर्मकीर्ति हैं। विज्ञानवादियों का एक भेद सत्कारविज्ञानवादी तथा मिथ्याकारविज्ञानवादी के रूप में भी मिलता है। सभी प्रकार के विज्ञानवादी यह मानते हैं कि विज्ञान, विज्ञप्ति, मनस, अथवा चित समानार्थी है।¹⁵ तथा यह भी कि 'विज्ञप्ति' ही परमार्थतः सत् है। इससे भिन्न जो कुछ है वह व्यवहारिक सत्य है दोनों सम्प्रदायों में मुख्य अन्तर यह है कि युक्त्यनुयायी कुल छः विज्ञान की सत्ता को मानते हैं। यथा-वक्षुर्विज्ञान, स्रोतविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान और मनोविज्ञान। जबकि इससे भिन्न सम्प्रदाय वाले अर्थात् आगमानुयायी विज्ञानवादी अष्टविध विज्ञानवादी हैं। सातवां विज्ञान 'आलय विज्ञान' तथा आठवां विलप्तमनोविज्ञान है। 'विलप्तमनोविज्ञान से तात्पर्य है- वलेश से युक्त विलप्त मनोविज्ञान राग, द्वेष, मोह ही त्रिविध वलेश है इनसे युक्त रहने के कारण इस 'मनोविज्ञान' को विलप्त कहते हैं। आलयविज्ञान के और भी नाम हैं विपाकविज्ञान, मूलविज्ञान, आदानविज्ञान, विमतविज्ञान आदि।

विषय- विज्ञानवाद में विज्ञप्ति ही एकमात्रसत् है। संसार की प्रत्येक वस्तुएँ अलातवक्र की भांति असत् हैं। वस्तुतः सभी हमारे चित के प्रतिबिम्ब स्वरूप हैं, जिन्हें हम अविद्या से अस्त होने के कारण बाह्य वस्तु समझते हैं।¹⁶ आलयविज्ञान के बिना भी संसार की प्रवृत्ति निवृत्ति सम्भव नहीं है। प्रवृत्ति शब्द से तात्पर्य शरीर का पुनः प्रतिस्नधि ग्रहण करना तथा निवृत्ति से सोपधिषेण और निरूपधिषेण निर्वाणधातु को प्राप्त करना।

आगमानुयायी योगाचार सन्तों के प्रतिपादक, आर्य मैत्रेयनाथ तथा आर्य असङ्ग व वसुबन्धु आदि थे। आलयविज्ञान की उत्पत्ति का सुविस्तृत ज्ञान सर्वप्रथम असंग के ग्रन्थ योगाचारभूमि में प्राप्त होता है। आगे जाकर आचार्य वसुबन्धु ने अपने ग्रन्थों में इन्हें और सरल एवं स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत किया। चार स्वरूपों के द्वारा आलयविज्ञान को समझना आसान हो जाता है। वे स्वरूप हैं- 1- आलम्बन 2- आकार 3- स्वरूप 4- उससे उत्पन्न चैतसिका। आर्य असंग के ग्रन्थों में आलय विज्ञान की चर्चा गम्भीर एवं गूढ़ है। वसुबन्धु ने 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' में आलय विज्ञान की चर्चा सरल शब्दों में की है।¹⁷ यथा-

¹⁵ चित्तं मनोऽथ विज्ञानमेकार्थं चिन्तोतीति चित्तम्। मनुत् इति मनः। विज्ञानातीति विज्ञानम्। चित्तं शुभाशुभैर्धातुभिः चित्तम्। अभि. को. भा. 2/ 34, बौद्ध भारतीय मन्यमाला
¹⁶ विज्ञप्तिमात्रमेवैतदसदृशवभासनात्। यथा तैमिरिक्रस्तासत्केशचन्द्रादिदर्शनम्। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि-प्रकरणद्वयम् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 1992 पृ 17
¹⁷ आत्मधर्मोपचारो हि विविधो यः प्रवर्तते। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिका, कारिका -1, 2

**आत्मधर्मोपचारो हि विविधो यः प्रवर्तते।
विज्ञानपरिणमोऽसौ परिणामः स च त्रिधा।।।।।
विपाको मननाख्यश्च विज्ञप्तिर्विषयस्य च।
तत्रलयाख्यं विज्ञानं विपाकः सर्वबीजकम्॥१॥**

अर्थात् विज्ञान का परिणाम तीन प्रकार का है, विपाकविज्ञान, मनन, मनोविज्ञान और विषयविज्ञप्ति। इनमें विपाक विज्ञान ही आलयविज्ञान है, शुभ अशुभ कर्मों की वासना के परिपाक से, जिस फल की अभिवृत्ति होती है, वही विपाक विज्ञान कहलाता है।

'मनन या' विलप्त मनोविज्ञान द्वितीय परिणाम है। इसका उद्भव आलयविज्ञान में स्थित वासना के परिपक्व होकर बहिर्गत होने के साथ ही होता है तथा उसके शान्त होते ही समाप्त हो जाता है।

छः प्रकार के वक्षुरादिविज्ञान को विषयविज्ञप्ति कहते हैं। क्योंकि इनके विषयों का प्रत्यवभास होता है। विषयो की प्रतीति होती है। विज्ञप्ति के ये तीन प्रकार ही 'परिणमन' हैं अर्थात् प्रज्ञप्ति का ही इन तीनों में बदलती है जिससे इन्द्रियों व उनके विषय उत्पन्न होते हैं।¹⁸

आलयविज्ञान को 'सर्वबीजक विज्ञान' भी कहते हैं, सर्वबीजक विज्ञान इसलिए, क्योंकि यह समस्त सांकेतिक और वैयदात्मिक धर्मों की वासनाओं का आश्रय है। इसके कारण इसे आधारविज्ञान भी कहते हैं। समस्त धर्म इसमें कार्यत्वेन उपनिबद्ध होते हैं। इसलिए यह आलय कहलाता है। जानता है, इस कारण इसे विज्ञान कहते हैं। 'विज्ञानातीति विज्ञानम्' इसे विपाकविज्ञान भी कहते हैं क्योंकि इसमें समस्त धातु¹⁹, गति²⁰, योनि²¹ एवं जातियों²² में यह कुशल, अकुशल कर्मों के विपाक के रूप में उत्पन्न होता है।²³ विज्ञानातीति विज्ञानम्-- सर्वधर्मबीजाश्रयत्वात् सर्वबीजकम्²⁴ पुनः आलयविज्ञान में पांच सर्वत्रग चैतसिक रहते हैं। वे पांच हैं- स्पर्श, मनस्कार, वेदना, संज्ञा, चेतना। असंविदितकोपादि-

स्थानविज्ञप्तिकम् च तत्²⁵

आलयविज्ञान के चैतसिक²⁶

सदा-स्पर्श-मनस्कार-चित्त-संज्ञा-चेतनान्वितम् सभी प्रकार के विज्ञानों या चित्तों के भीतर पाये जाने वाले धर्मों को चैतसिक कहते हैं। **चित्ते भवाः चैतसिकाः²⁷** चित में जिस क्षण जो धर्म, रहता है वही सै ही प्रतीति होती है। उसे ही चैतसिक कहते हैं। आलयविज्ञान में पांच चैतसिक हमेशा रहते हैं जो हर जगह पाये जाते हैं।²⁸

¹⁸ देव, आचार्य नेत्र, बौद्ध धर्म दर्शन मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पुनर्मुद्रण 2006, पृ- 437

¹⁹ तीन धातुयें हैं- कामधातु, रूपधातु, अरूपधातु।

²⁰ गति- देव, असुर, मनुष्य, तिर्यक, प्रेत, नारक, आसुर को छोड़कर पांच गतियां होती हैं

²¹ योनियां- जरायुज अण्डज, संख्येदज, औपपादक ये चार योनियां हैं।

²² जाति- क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र

²³ विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिका पृ 153

²⁴ विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिका, सारांश पृ-77, अभिधर्मकोशभाष्यस्फुटार्थासहितं, बौद्ध भारतीय ग्रन्थमाला, 1987, 3-1

²⁵ विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिका, कारिका 3

²⁶ चेतसि भवं तदायत्तनुत्ताया ति चेतसिकं अभिधर्ममत्संगो प्रथम भाग, सं सं वि व. 1991 पृ 15

²⁷ 'चित्ते भवाः चैतसिकाः' अभिधर्मकोशभाष्यस्फुटार्थासहितम्, उपेक्षा वेदना तत्रनिवृत्त्याकृतं च तत्। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिकाभाष्य, कारिका 4 भाष्य, पृ 173

²⁸ उपेक्षा वेदना तत्रनिवृत्त्याकृतं च तत्। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि त्रिशिकाभाष्य, कारिका 4 भाष्य, पृ 173

आलयविज्ञान की एक विशेषता यह भी है कि उसमें जो वासनायें विद्यमान रहती हैं उनके प्रति वह उदासीन रहता है अर्थात् उपेक्षा वेदना पायी जाती है। यथा-

उपेक्षा वेदना तत्रनिवृत्तान्याकृत च तत्।

तथा स्पर्शादयः तच्च वर्तते स्रोतसौधवत्॥१॥

अर्थात् उपेक्षारूप वेदना अदुःखासुखा ही आलयविज्ञान का धर्म है। क्योंकि सुखवेदना तथा दुःखवेदना के लिए परिच्छिन्न आलम्बन की अपेक्षा रहती है। जो प्रवृत्ति विज्ञान में ही संभव है। वह 'प्रवृत्त' कहा जाता है। क्योंकि मनोभूमि पर उदित वलेशों से आवृत्त नहीं होता है। वह 'अव्याकृत' है। क्योंकि कुशल तथा अकुशल विषयों के रूप में विभक्त नहीं रहता। इसी प्रकार स्पर्शादि भी अपरिच्छिन्न रूप से आलय विज्ञान में रहता है जो वासनारूप कहे जाते हैं।²⁹ यह क्षणिक विज्ञानों का सन्तान इस प्रकार प्रवृत्त रहता है जैसे स्रोत से जलप्रवाह।

पुनः स्थिरमति ने अपने भाष्य में लिखा है कि 'अर्हत्त्व या बुद्धत्व प्राप्त करने पर आलयविज्ञान की निवृत्ति होने से नैशान्त्यसिद्धि मिलती है। परन्तु संसारदशा में उसके अधीन मनस्वरूप मनोविज्ञान प्रवृत्त होता है।

तस्य व्यावृत्तिर्हृत्वे, तदाश्रित्य प्रवर्तते।

तदालम्बनं मनो नाम विज्ञानं मननात्मकम् ॥५

पुनः विलष्ट मनोविज्ञान मनन करने वाला विज्ञान है, आलयविज्ञान ही विलष्ट मनोविज्ञान का आश्रय तथा आलम्बन है। विलष्ट मनोविज्ञान को मनस विज्ञान भी कहते हैं।³⁰

साम्य एवं वैषम्य- भवङ्ग नामक चित तथा आलय विज्ञान में साम्यता की बात करे तो स्थविरवादी जन भवङ्ग नामक चित स्वीकार करते हैं और उसी के आधार पर कर्म कर्मफल पुनर्जन्म की व्यवस्था भी करते हैं, वह आलयविज्ञान की सत्ता नहीं मानते हैं। इनके मतानुसार भवङ्ग ही व्यक्तित्व है, जो कुछ अवस्थाओं को छोड़कर समुद्र की भांति भीतर ही भीतर निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। जैसे कि आलयविज्ञान में जब तक बुद्धत्व न मिले तब तक उसकी गति अपरिच्छिन्न रूप से चलती रहती है, वैसे भवङ्ग नामक चित भी अर्हत् के निरूपणार्थ निर्वाणघातु में तीन होने तक प्रवृत्त रहता है। समुद्र से तरंगों की भांति।³¹

आलयविज्ञान में जैसे सात प्रवृत्तिविज्ञानों की प्रवृत्ति होती है और उसी में विलीन हो जाती है समुद्र के तरङ्गों की भांति, उसी प्रकार भवङ्ग चित से छः प्रवृत्तिविज्ञानों की प्रवृत्ति होती है और उसी में विलीन हो जाती है। आलयविज्ञान की भांति भवङ्ग चित भी जन्म प्रतिसन्धि मरण कृत्य करता है, इसमें भी कुशल अकुशल कर्मों का विपाक होता है। आलयविज्ञान व भवङ्ग दोनों ही संस्कृत धर्म व क्षणिक हैं। आलम्बन की दृष्टि से इन्द्रिय अर्थ व वासनायें आलयविज्ञान का आलम्बन हैं, पाँच इन्द्रिय विज्ञानों के जो भी आलम्बन हैं वे सब आलय विज्ञान के आलम्बन होते हैं। भवङ्ग मनोद्वार कहलाता है अतः चक्षुरादि द्वारों तथा मनोद्वार में आभासित होने वाले आलम्बन भवङ्ग के भी आलम्बन होते हैं।

इस प्रकार साम्यता होने के बाद भी इनमें कुछ मतभेद भी दिखाई पड़ते हैं। विज्ञानवादी अनेक विज्ञानों की स्थिति स्वीकारता है, फलस्वरूप जैसे प्रवृत्ति विज्ञान उत्पन्न होते हैं उस समय आलय विज्ञान स्थित रहता है, इनका मानना है कि

²⁹ अवस्थी, बच्चुलाल, ज्ञान भारतीय दर्शन बृहत्कोश, शारदा पब्लिशिंग हाउस 2004 पृ- 806

³⁰ तदाश्रित्य प्रवर्तते तदालम्बनं मनोनाम विज्ञानं मननात्मकम्। विज्ञानमात्रतासिद्धि त्रिशिका कारिका 5

³¹ तस्य व्यावृत्तिर्हृत्वे, तदाश्रित्य प्रवर्तते। विज्ञानमात्रतासिद्धित्रिशिकाभाष्य, कारिका 5 पृ 180

एक क्षण में कम से कम तीन विज्ञान एक साथ रहते हैं यथा आलय विज्ञान, विलष्ट मनोविज्ञान तथा प्रवृत्ति विज्ञान में से कोई एक। इस तरह आलय विज्ञान एक स्थिर विज्ञान के समान होता है, जिसमें सदा वासनायें रहती हैं, दूसरा कोई विज्ञान इनका आधार नहीं बनती है। स्थविरवादी जन एक काल में एक से अधिक विज्ञान नहीं मानते हैं, उनका मानना है कि जब कोई वीथिवित उत्पन्न होता है तो उस कालखण्ड में भवङ्ग निरुद्ध हो जाता है, इस कारण भवङ्ग वासनाओं का आधार नहीं होता है, अपितु लोकोत्तर चित्तों को छोड़कर सम्पूर्ण चित्तसन्तति वासनाओं को आधार है।

निष्कर्ष- इस प्रकार विज्ञानवाद के अनुसार आलयविज्ञान में कुशल अकुशल अव्याकृत आदि वासनायें निहित रहती हैं। वह समस्त बीज धर्मों का आधार होता है उसी प्रकार भवङ्ग में पडविज्ञान उत्पन्न होकर उन्हीं में पतित हो जाती है। फलस्वरूप वह भी वासनाओं का आधार होती है। भवङ्ग तथा आलयविज्ञान संस्कृत और क्षणिक होते हैं। जहाँ इन दोनों के बीच समानता नजर आती है। वहीं कुछ अन्तर भी है। जैसे- विज्ञानवाद में यह मान्यता है कि कम से कम तीन विज्ञान अवश्य उपस्थित होते हैं- आलयविज्ञान, विलष्ट मनोविज्ञान, कोई एक प्रवृत्तिविज्ञान अर्थात् यह युगपत् उपस्थिति में रहती है। वहीं स्थविरवाद में ऐसी कोई धारणा नहीं है कि एक काल में एक से अधिक विज्ञान उपस्थित हो यह मानते हैं कि जब कोई प्रवृत्तिविज्ञान उत्पन्न होता है तब भवङ्ग चित निरुद्ध हो जाता है। इसे वह भवाङ्गोपच्छेद नामक संज्ञा देते हैं। फलस्वरूप वह मानते हैं कि केवल भवङ्ग ही वासनाओं का आधार नहीं होता अपितु लोकोत्तर चित्तों को छोड़कर समस्त चित्त यथायोग्य वासनाओं के आधार होते हैं।³² इस प्रकार आलयविज्ञान की सत्ता को आगमनानुयायी विज्ञानवादी ही स्वीकार करते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अभिधर्मसंग्रहो प्रथम भाग, अनिरुद्धाचार्य, सं सं वि. वि, 1991
2. अभिधर्मकोशभाष्यस्फुटार्थासहितं, बौद्ध भारतीय ग्रन्थमाला, 1987
3. अंगुत्तरनिकाय बौद्ध भारतीय वाराणसी 2009
4. महापदानसुतं दीर्घनिकाय दुतीयो भागो, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्ध भारतीय ग्रन्थमाला, 2009
5. बौद्धदर्शन प्रस्थान, आचार्य रामशंकर त्रिपाठी, केन्द्रीय उच्च शिक्षा संस्थान 1997
6. बौद्धधर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पुनर्मुद्रण 2006
7. लंकावतारसूत्र, स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारतीय ग्रन्थमाला 2006-
8. विज्ञानिमानतासिद्धि-प्रकरणद्वयम्, सम्पादक रामशंकरत्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 1992
9. ज्ञान भारतीय दर्शन बृहत्कोश, बच्चुलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस 2004

³² त्रिपाठी, आचार्य रामशंकर, बौद्धदर्शन प्रस्थान, भूमिका, पृ- xxxi-xxxii

सिद्धान्तकौमुद्याः रत्नार्णवटीकायाः समीक्षात्मकः परिचयः

राजेशचन्द्रः पोखरियाः³³

प्रमुखशब्दाः- भाषा, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, वैज्ञानिकत्वम्, पाणिनीयव्याकरणम्

शोधसारः- पाणिनीयव्याकरणस्य प्रक्रियानुसारिव्याख्यापरम्परायां वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी मूर्ध्नि वर्तते, अस्याः टीकापरम्परातीवविस्तृतानि, तथाप्रकाशितटीकास्वन्तमायाः रत्नार्णवार्णवटीकायाः सर्वश्रेष्ठ्यं समीक्षात्मकः परिचयः कौमुदीटीकापरम्परेऽप्येवमपूर्वकं अस्मिन् शोधपत्रे प्रदत्तं वर्तते - सं.

मानवभावाभिव्यक्तये भाषासदृशं साधनं न किमपि वर्तते । भाषायाः यथावत् संस्करणस्य दायित्वं तद्भाषायाः व्याकरणस्य भवति । यतोहि शब्दसाधुत्वासाधुत्वप्रतिपादकं शास्त्रं व्याकरणमेव । यथा प्राचीना संस्कृतभाषा तथैव प्राचीनं संस्कृतव्याकरणम् । प्राचीनकालादेव व्याकरणपरम्परा प्रचलति । संप्रति च सर्वत्राहं, सुप्रचलितं प्रामाणिकं च व्याकरणं भवति पाणिनीयं व्याकरणम् । तत्र कारणमस्य लाघवत्वं, वैज्ञानिकत्वं त्रिमुनिषोपकत्वञ्च । पाणिनीयव्याकरणमाश्रित्य द्विधा व्याख्यापरम्परा प्रचलितवर्तते । तत्रैका सूत्रानुसारिणी तथाऽप्यत्र च प्रक्रियानुसारिणी । सूत्रानुसारिव्याख्यासु काशिकादयः, तथा प्रक्रियानुसारिव्याख्यासु च प्रक्रियाकौमुद्यादयः प्रचलिताः सन्ति । प्रक्रियाग्रन्थेषु सम्प्रति प्रचलितेषु प्रामाणिकेषु च ग्रन्थेषु श्रीमता भद्रोजिदीक्षितविरचिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी मूर्ध्नि विराजते । अस्याः कालः सं. - १७१० - १७७७ मध्ये स्वीक्रियते³⁴ । अस्य कस्यापि ग्रन्थस्य लेखकस्य सम्यग्भावाभिगमनाय तस्योपरि नानाटीकाः उद्गीताश्च विरच्यन्ते । सुष्ठु खलु उच्यते - “टीका गुरूणां गुरुः” । वस्तुतः ग्रन्थस्य यावत्तः अपि टीकाः भवेयुः तास्तु ग्रन्थस्य गौरवाय एव । पाठकाः अपि प्रायः चतुर्धा भवन्ति, केचन सामान्याः, केचन मध्यमाः केचनोत्तमाः तथा केचन चोत्तमोत्तमाः इति । अतः सर्वाः अपि टीकाः अध्येतॄणां, विदुषां तथाऽनुसन्धातॄणां मोदाय एव भवन्ति ।

सिद्धान्तकौमुद्याः टीका-परम्परा - सिद्धान्तकौमुद्याः अपि विविधाः सन्ति । अद्यावधि प्रायः २७ तः अधिकाः टीकाः अस्याः उपरि लिखिताः सन्ति तथा सम्प्रत्यपि लिख्यमानाः च सन्ति । यथा- प्रौढमनोरमा- भद्रोजिदीक्षितः, तत्त्वबोधिनी-ज्ञानेन्द्रसरस्वती, सुखबोधिनी-श्रीनीलकण्ठवाजपेयी, तत्त्वटीपिका-रामानन्दः, बृहच्छब्देन्दुशेरः, तद्युगल्लेखः-नागेशः, रत्नाकरः-रामकृष्णः, पूर्णिमा-रङ्गनाथयज्वा, बालमनोरमा- वासुदेववाजपेयी, रत्नार्णवः- कृष्णमित्रः, सुमनोरमा- तिरुमलदादशाहयाजी, प्रकाशः-तोपलदीक्षीतः, विलासः-लक्ष्मीनृसिंहः, रत्नाकरः-शिवरामचन्द्रसरस्वती, फविकाप्रकाशः-इन्द्रतोपाध्यायः, बालबोधः- सारस्वतव्यूढमिश्रः, मानसरञ्जनी-बल्लभः, सुबोधिनी-जयकृष्णः, भावबोधिनी- करपुतुगलधर्मः(Karaputugaladharmas), ललिता- अनन्तनारायणः, पङ्क्तिचन्द्रिका-गङ्गाप्रसादः, तर्कचन्द्रिका-कृष्णभद्रमुनिः, सुधाकरः-कृष्णशास्त्री, कौमुदीमूलार्थविवोतिनी- पं.दीनबन्धु-झाः, लक्ष्मी-

³³ शोधच्छात्रः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः, उत्तराखण्डः

³⁴ संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास, युधिष्ठिरीमांसकः, वैदिकसाधन - आश्रमः देहरादूनम्, प्रथमसं. - २००७, पृ. - ३८६

पं.श्रीसभापतिशर्मोपाध्यायः, रत्नप्रभा (हिन्दीटीका)- बालकृष्णफल्की, श्रीधरमुखोल्लासिनी(हिन्दीटीका)- गोविन्दप्रसादशर्मा(गोविन्दाचार्यः), इत्यादयः³⁵ ।

पूर्वोक्तासु टीकासु काश्चन प्रकाशिताः काश्चन च अप्रकाशिताः । प्रकाशितासु काश्चन प्रचलिताः काश्चन अप्रचलिताश्च वर्तन्ते । अप्रकाशितासु श्रीकृष्णमित्रविरचिता रत्नार्णवटीका अप्येका प्राचीना अतीवविस्तृता च वर्तते ।

सिद्धान्तकौमुद्याः टीका-परम्परायां रत्नार्णवटीका- अस्याः टीकायाः उपलब्धमातृकाणामाधारेण ज्ञायते यदियं टीकाऽतीव विस्तृतेति । अतः विषयेऽस्मिन् मे समुत्सुकता अजायत । अस्याः टीकायाः अभिधानं वर्तते रत्नार्णवः इति । किन्तु किमत्र व्याकरणसिद्धान्तरूपाणि नूतनतथ्यात्मकानि रत्नानि सन्ति न वेति जिज्ञासामधिकृत्य विषयेऽस्मिन्ननुसन्धानाय मे प्रवृत्तिरजायत । परन्तु किमत्र नादीन्यं, किञ्च वैशिष्ट्यमस्याः टीकायाः तथा अन्याभिः टीकाभिः अस्याः किमपि साम्यवैषम्यादिकं वर्तते न वेत्यादिकं सर्वमनुसन्धानात् प्रमेयं ज्ञास्यते ।

रत्नार्णवटीका-परिचयः - वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः टीकास्वन्तमा श्रीकृष्णमित्रविरचिता टीका वर्तते रत्नार्णवटीका इति । मातृका-सूचीपत्राणां नूतनसूचीपत्रेण (NCC-२०१७) सह चौखम्बादिसंस्कृतग्रन्थ- प्रकाशनसूचीपत्राणामवलोकनेन ज्ञायते यत् टीकेयमप्रकाशितेति ।

अद्यावधि हस्तगतानां रत्नार्णवटीका-मातृकाणां परिचयः ³⁶ - NCC इत्यस्याधारेणस्य बहुषु संग्रहालयेषु अस्य ग्रन्थस्य मातृकाः विद्यन्ते । तासु राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य गङ्गानाथझापरिसरस्य मातृकासंग्रहालये तिस्रः मातृकाः विद्यन्ते । मया अद्यावधि गङ्गानाथ-झा-परिसरस्य तिस्रः एव मातृकाः सङ्गृहीताः । एतासां तिसृणामपि मातृकाणां विवरणमित्थं वर्तते -

प्रथमा मातृका - आदितःअजन्तपुँल्लिङ्गपर्यन्तं विद्यते । अस्याः विवरणमित्थं वर्तते -

- अधिगमसंख्या - एतस्याः मातृकायाः अधिगमसंख्या - ४९३४७ वर्तते ।
- भाषा - मातृकेयं संस्कृतभाषायां निबद्धा वर्तते ।
- लिपिः - अस्याः मातृकायाः लिपिः देवनागरी वर्तते ।
- पृष्ठसंख्या - १-९८ (पञ्चसन्धयन्तपुटसंख्या - १-६७ / पृष्ठसंख्या = १३०)
- पङ्क्तयः- अस्यां मातृकायां प्रतिपृष्ठं नव (९) / दश (१०) पङ्क्तयः सन्ति ।

³⁵ संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास, युधिष्ठिरीमांसकः वैदिकसाधन आश्रम देहरादून, प्रथमसं. - २००७, पृ. - ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास(पञ्चदश खण्ड-व्याकरण) पद्यभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तरप्रदेश संस्कृतसंस्थान लखनऊ, प्रथमसं. - २००१, पृ. - २३०, २३१ तथा मातृकासूचीपत्राणां नूतनसूचीपत्रम् NEW CATALOGUS CATALOGOROM VOL.XXXIX UNIVERSITY OF MADRAS (NCC-2015) पृ. --- 89-10

³⁶ गङ्गानाथझापरिसरस्य नूतनमातृकासूचीपत्रम्, षष्ठः खण्डः, DESCRIPTIVE CATALOGUE OF MANUSCRIPTS VYAKARANA SHIKSHA NIRUKTA KOSH (Vol.-VI) Edited by Prof. Sarvanarayan Jha, Dr. Beena Mishra and Dr. Ramkishor Jha First Ed. 2012 क्रमसं. - ३०३६, ३१५०

- स्थितिः - सम्यक् (पठनयोग्या)
- पूर्णता/अपूर्णता - इयं मातृका अपूर्णा वर्तते
- द्वितीया मातृका** - केवलं तद्धितप्रकरणात्मिका (पत्रसं.-१-८४), अस्याः लिपिश्च - देवनागरी । इयमपि मातृका अपूर्णा वर्तते।
- तृतीया मातृका** - केवलं कारकप्रकरणात्मिका (पत्रसं.-१-२२), अस्याः लिपिश्च - मैथिली । इयमपि मातृका अपूर्णा वर्तते।

अस्याष्टीकायाः चतस्रः मातृकाः “सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य सरस्वतीभवनपुस्तकालये” उपलभ्यन्ते। एवमेव जोधपुरे “राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट” इत्यस्य संबद्धान्तलेऽपि स्त्रीप्रत्ययप्रकरणपर्यन्तमियं टीकोपलब्धा वर्तते।

टीकाकर्तुः परिचयः³⁷ -

नाम - अस्याः टीकायाः कर्ता श्रीकृष्णमित्रः वर्तते। अस्यापरं नाम कृष्णाचार्यः अप्यस्ति।

वंशः- अस्य पिता श्रीरामसेवकः तथा पितामहः श्रीदेवीदत्तः (देवदत्तः) वर्तते। जोधपुरस्थे “राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट” संबद्धान्तले विद्यमानायां मातृकायामित्थं वर्णनं प्राप्यते - “इति श्रीदेवदत्तात्मजस्य रामसेवकतनुद्वाचार्यकृष्णमित्रकृते रत्नाणविवे संज्ञाप्रकरणं समाप्तमंगमत्” । अस्य पिता श्रीरामसेवकेन भाष्यप्रदीपव्याख्या विरचिता वर्तते।

कालः - प्रासासु तिसृषु मातृकासु टीकाकर्तुः कालः परिचयश्च नास्ति। कदाचिद् अस्यासु मातृकासु परिचयादिकं विवरणञ्च भवेत्। एवमेवैतेषामन्यप्रकाशितग्रन्थानामपि साहाय्येन कालादिविषये किञ्चिज्ज्ञातुं शक्यते। यत् कदाचिदनुसन्धानावसरे सम्भवित्यति। मया प्राप्तायाः तद्धितप्रकरणस्य मातृकायाः अन्ते पुष्पिकायामित्थं वर्णनं प्राप्यते- “इति कौमुदीव्याख्याये रत्नाणविवे पूर्वार्थं समाप्तम् । शुभमस्तु । संवत् - १८८९ ज्येष्ठशुक्लतृतीया चन्द्रवासम् श्रीरामकृष्णाय नमः श्री जानकीवल्लभाय नमः श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः”³⁸ । एवमेव प्रो.आजादमिश्रवर्येण सम्पादितायाः रत्नाकरटीकायाः प्रथमभागस्य भूमिकायामस्य विषये उल्लेखः वर्तते यत् सिद्धान्तकौमुद्याः तत्त्वबोधिनीतः परं रत्नाणविवेटीका तथा ततः परं रत्नाकर-टीका विरचिता³⁹ इति। अतः अनुमानेनार्याः टीकायाः कालः सं. - १९००— १८०० मध्ये स्यादिति वक्तुं शक्यते।

³⁷ मातृकासूचीपत्राणां नूतनसूचीपत्रम् NEW CATALOGUS CATALOGOROM VOLXXXIX UNIVERSITY OF MADRAS (NCC-2015) पृ. ९५

³⁸ संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास, युधिष्ठिर मीमांसक-रामलालकमूट्टस्ट, बहालगाढ, सोनीपत हरियाणा, चतुर्थसंस्करणम्-१९८४ पृ. सं.—६०२, ५३४, संस्कृतव्याकरणशास्त्रेतिहासविमर्शः, श्री अशोकचन्द्र गौडशास्त्री, भारतीयविद्यासंस्थानम्, वाराणसी, प्रथमसं.-१९९७ पृ. ३६७, संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास (पञ्चदश खण्ड-व्याकरण) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तरप्रदेश संस्कृतसंस्थान लखनऊ, प्रथमसं.-२००१, पृ.-२३०

³⁹ (४७४३५) संख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः। पृ.- ८४

⁴⁰ सिद्धान्तलक्षणेभूमिः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः प्रथमभागः, प्रो. आजादमिश्रः (मधुकरः) केन्द्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, लखनऊ, प्रथमसं.-१९९५। भूमिकायाम्।

प्रस्तुत-ग्रन्थकारस्य अन्याः कृतयः- श्रीकृष्णमित्रस्यान्याः कृतयोऽपि वर्तन्ते। तद्यथा -

- | | |
|--------------------|-------------------------------------|
| (१) युक्तिरत्नाकरः | (४) शब्दकौस्तुभस्य भावप्रदीपटीका |
| (२) वादचूडामणिः | (५) वैयाकरणभूषणसारस्य—रत्नप्रभाटीका |
| (३) वादसुधाकरः | (६) तत्त्वमीमांसादयश्च । |

वैशिष्ट्यम् - ढस्तगतप्रतीनामनुसारेणात्र टीकायाः कानिचन वैशिष्ट्यानि प्रतिपाद्यन्ते। तद्यथा-

- प्रथमं वैशिष्ट्यं त्वस्याः विस्तृतं सरतं च व्याख्यानं भवति, येन च सामान्यमध्यमोत्तमोत्तमाऽधिकारिणः समेऽपि पाठकाः अनुसन्धितसतः ताभान्विताः भवित्यन्ति। वस्तुतः एतद्वैशिष्ट्यं रत्नाणविवेति नाम्नैव ज्ञायते। केवलं सन्धियपर्यन्तव्याख्यानमेवस्याः ६५ पृष्ठेषु (१३० पृष्ठेषु) प्रसृतं वर्तते। एवम् अजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणपर्यन्तं चाद्वय ९८ पुटाः (१९६ पृष्ठानि) विद्यन्ते, तथैव तद्धितप्रकरणस्य पूर्वार्धं यावत् ८४ पुटाः (१६८ पृष्ठानि) सन्ति। अनेनानुमातुं शक्यते यदस्याः मातृकायाः विस्तारः कियानिति।

- अत्र मङ्गलाचरणस्य व्याख्यानेऽपि नूतनं तथ्यं प्रतिपादितं वर्तते यदन्यासु सिद्धान्तकौमुदीटीकासु नावलोक्यते तद्यथा-

- शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकं नमस्कारात्मकं मङ्गलं विद्यनविद्यातार्थम् आवरणभिमत् प्रतिजानीते **मुनित्रयमित्यादिना** । ननु मध्यगुरुपस्य जगणस्य शेगदायकतया कथमस्य मङ्गलत्वम् । न च वर्णाभावान्न दोष इति वाच्यम्।

वर्णयते नायको यत्र फलन्तद्रत्नादिशेत् ।

अन्यथा तु कृते काल्ये कवेदोषावहं फलम्⁴⁰ ॥ इत्युक्तेः ।

न च यावत् काव्यलक्षणाभावान्नेदं काव्यमिति वाच्यम् । हीनाङ्गेषु यथा तवेदं शरीरन्दुष्टमित्युच्यते । न तु शरीरमेव नेति। एवं दुष्टस्यापि काव्यत्वे बाधकाभावात् कविकर्म हि काव्यम् । मैवम् । मुनिपदोपादानेनात्रोपात् । तदङ्गः -

देवतावाचका ये च ये च भद्रादिवाचकाः ।

ते सर्वे नैव दूर्याः स्युर्गणतो लिपितोऽपि च⁴¹ ॥ इति

एवं ज्ञातुं शक्यते यत् प्रस्तुतटीकाकारस्य ज्ञानं केवलं व्याकरणशास्त्रं यावत् सीमितं नास्ति।

- प्रथममाहेश्वरसूत्रव्याख्यानेऽपि विस्तृतं व्याख्यानमत्र विहितं वर्तते। तत्र बहूनि नूतनतथ्यान्यापि वर्तन्ते, यानि च श्वेत्सरत्नाकरतत्त्वबोधिनीबालमनोरमादिष्वपि न वर्तन्ते। केपाञ्चन च विस्तारः अपि वर्तते। तद्यथा - **अडम् ॥** आदिरन्त्येनेत्यनेनैकवाचयतया अन्त्येन णकारदिना सहित आदि इकारादिर्भ्यगानां स्वस्य च संज्ञेयार्थात्संज्ञासूत्रमिदम् । अनुकार्यानुकरणयोरभेदविवक्षायाम् अर्थवाताभावान्नवर्णेभ्य स्वावुत्पतिः । कथं तर्हि

⁴⁰ (४९३४७) संख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः। पृ.- १

⁴¹ तत्रैव।

अर्थवताभावेऽनुकार्याणां बोध इति चेन्न । सादृश्यादनुकार्याणां बोधेऽपि तृतोपस्थापकत्वाभावात् । अपदनन प्रयुञ्जीतेति निषेधस्तु न भवति । अपरिनिष्ठितं नेत्येव तदार्थात् । इह तु नित्यविषयविषयतया परिनिष्ठितत्वात् । वाक्ये संहिताया अनित्यत्वात्सन्धिरपि न । वस्तुतस्तुवचनकरणे कार्यमात्रस्यैच्छिकतया नाम सन्धिः । कारप्रत्ययोऽपि न । रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलमित्यत्रोपसंख्यातत्वेन बाहुल्यकात् । किञ्चेह कारप्रत्ययस्य प्राप्तिरेव नास्ति । न हि वर्णात्कार इत्यत्र वर्णादुत्त्वार्यमाणात्कारप्रत्यय इत्यादिरर्थः । फकार इत्यादावज्जलसमुदायस्य वर्णत्वाभावे न कारप्रत्ययानापत्तेः । किन्तु इविस्तपौ धातुनिर्देश इत्यतो निर्देश इत्यनुवर्तते । इह तु आनुपूर्व्यमात्रसम्पादने तात्पर्यम् । न तु प्रयोगस्थानिर्देशे । एवकार इत्यत्र घञन्तकृधातुना षष्ठीसमासः । केचित्तु उच्चैस्तत्र वा षट्कार इति निर्देशात्त्वचित्समुदायात्कारप्रत्यय इत्याहुः । षट्कारकरणमित्यादिसिद्धये निर्देशाश्रयणमिति तदाशयः । नन्वकः.....ब्रह्मणं व्यर्थमेव⁴²

- टीकाकारेण श्रीकृष्णमित्रेण शब्दकौस्तुभस्य भावप्रदीपनाम्नी टीकाऽपि विरचिता वर्तते । अतः अस्यां टीकायामपि तत्रत्यतथ्यानि प्रतिपादितानि सन्ति । तथा - अइउण्णसूत्रव्याख्यानप्रसङ्गे - “अइउण्ण इत्यत्र ह्रस्वमात्रवृत्तिजातिमात्रपरिनिर्देशे.....अत एव अणुदित्सवर्णस्यैति सूत्रमस्तिवति तदाशयः । **कौस्तुभे व्यक्तीकृतः । यत्तु अण्वहणाभावे उपसर्गादित्यत्र त्वर्णग्रहणे न स्यादिति कौस्तुभे उक्तं तन्न तपस्तत्कालस्येत्येतेनापि त्वर्णग्रहणसंभवात् ।** वस्तुतस्तु उरण स्पर इत्यादौ ऋकारत्कारयोः समाहारद्वन्द्वे सवर्णदीर्घनपुंसक- ह्रस्वयोरगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्नुमभावे उरिति निर्देशादण् ब्रह्मणं व्यर्थमेव” ।

शोधपत्रसारः -

एवमस्मिन् प्रसङ्गे निष्कर्षरूपेण वक्तुं शक्यते यत् प्रत्येकं विदुषः भिन्ना भिन्ना शैली भवति । यदि कश्चन ग्रन्थस्य टीकां करोति चेत् सः तत्सम्बद्धाः अन्याः टीकाः अप्यवलोकयति । तासु यदि किञ्चित् स्फुटं नास्ति चेत् तत्र स्फुटं कर्तुं प्रयतते, अप्रतिपादितं प्रतिपादयति, स्वीयं च प्रामाणिकं मतं तत्रोपस्थापयति । तथैवात्रापि २७थे यद् अइउण्ण सूत्रव्याख्यानप्रसङ्गे शेखरकारेण सारगर्भितं सक्षिप्तं व्याख्यानं विहितम्, रत्नाकरकारेण चातीव विस्तरेण व्याख्यातम्, रत्नार्णवे इतोऽपि विस्तरेण व्याख्यानं विहितं वर्तते, नूतनतथ्यानि च तत्र प्रदत्तानि । यथा कारप्रत्ययविषये रत्नाकरकारेण न किमपि वर्णितम्, शेखरकारेणापि कारप्रत्ययोऽपि न बाहुल्यकात् इत्येवोक्तम् । किन्तु रत्नार्णवकारेण - किञ्चेह कारप्रत्ययस्य प्राप्तिरेव नास्ति..... इत्यारभ्य विस्तृतं नूतनं च तथ्यमुपस्थापितं वर्तते। सन्धिविषयेऽपि- **वस्तुतस्तुवचनकरणे कार्यमात्रस्यैच्छिकतया नाम सन्धिः इत्युक्तम्⁴³।** किन्तु रत्नाकरकारेण - **तस्मादुपजीव्यविशेषान्न यणादिकम् इति दिक्⁴⁴ इत्युक्तम् ।** एवमेव शेखरकारेण च - **एषु संहिताया अविषयानां संहिताकार्यम्⁴⁵ इत्यारभ्य एवोक्तम् ।**

⁴² (४९३४७) संख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः । पृ. -१
⁴³ (४९३४७) संख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः । पृ. ३, ४
⁴⁴ सिद्धान्तरत्नाकरेणभूषितायाः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याःप्रथमभागः, प्रो. आजादमिश्रः (मधुकरः) केन्द्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, लखनऊ, प्रथमसं.-१९९५
⁴⁵ श्रीमन्नागेशभट्टः, लघुशब्देन्दुशेखरः, 'श्री' हिन्दिव्याख्योपेत, व्याख्याकारः- डॉ. जयकान्तसिंहशर्मा, प्रथमसंस्करणम्- १९९८ ।

उपर्युक्तम् एतद् वैशिष्ट्यं तु केवलं प्रारम्भिकाणां केवाचन पुटानामवलोकनेन ज्ञायते । इतोऽपि रत्नार्णवे रत्नानि भविष्यन्त्येव । तत् सर्वमनुसन्धानात् परमेव ज्ञास्यते । वस्तुतः यथा सागरः विस्तृतः गभीरश्च भवति तथैवेयं रत्नार्णवटीकाऽपि अन्वर्थसंज्ञेति प्रतीयते । एतया च टीकया पाठकानामनुसन्धितसूनाचोपकारः नूनमेव भविष्यतीति विश्वासयामि । इतोऽपि रत्नार्णवे किञ्चित् रत्नानि सन्तीति तु सर्वमन्निषेधे शोधपत्रादिविषयवत् परं यथावत्संशयैः शनैः प्रकाशयिष्यते ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- ४९३४७ - इत्यधिगमसंख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः ।
- ४९४३७ - इत्यधिगम-संख्याका मातृका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गङ्गानाथझापरिसरः, मातृकासंग्रहालयः, प्रयागराजः ।
- ३८०१०, ३८४७०, ३८५४०, ३९३०९ इत्याद्यधिगमसंख्याकाः मातृकाः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य सरस्वतीभवनपुस्तकालयः वाराणसी उताग्रदेशः ।
- ४८४३/३०२६ - इत्यधिगमसंख्याकाः मातृकाः “राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट जोधपुर” संग्रहालयः राजस्थानम् ।
- गङ्गानाथझापरिसरस्य नूतनमातृकासूचीपत्रम्, षष्ठः खण्डः, Descriptive Catalogue of Manuscripts Vyakaran Shiksha Nirukta Kosh (Vol.-VI) Edited by Prof. Sarvanarayan Jha, Dr. Beena Mishra and Dr. Ramkishor Jha First Ed. 2012
- गङ्गानाथझापरिसरस्य शोधविषयसूचीपत्रम् ।
- चौखम्बासंस्कृतसाहित्यम् (प्रकाशनसूचीपत्रम्) देहली, वाराणसी, २०१८-१९
- बालमनोरमागर्भित - तत्त्वबोधिनी - लघुशब्देन्दुशेखरस्योस्तुलनात्मकमध्ययनम्, डॉ.हरिकृपाणु त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, प्रथमसं. - २००७
- मातृकासूचीपत्राणां नूतनसूचीपत्रम् New Catalogus Catalogorum (NCC) Vol. xxxix, University of Madras - 2015
- श्रीमन्नागेशभट्टः, लघुशब्देन्दुशेखरः, 'श्री'- हिन्दिव्याख्योपेत, व्याख्याकारः- डॉ. जयकान्तसिंहशर्मा, प्रथमसंस्करणम्- १९९८
- सिद्धान्तरत्नाकरेणभूषितायाः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः प्रथमभागः, प्रो. आजादमिश्रः (मधुकरः) केन्द्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, लखनऊ, प्रथमसं. - १९९५
- सिद्धान्तरत्नाकरेणभूषितायाः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः द्वितीयभागः, प्रो. आजादमिश्रः (मधुकरः) रा.सं.सं.मा.वि.भोपालपरिसरः, प्रथमसं.-२००९ ।
- सिद्धान्तरत्नाकरेण भूषितायाः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः तृतीयभागः, प्रो. आजादमिश्रः (मधुकरः) सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथमसं. - २०१६
- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमातत्वबोधिनीसंहिता (कारकप्रकरणान्ता) गिरिधरशर्माचतुर्वेदः, परमेश्वरानन्दशर्माविद्याभारकरः, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सं. - २००९

पुराणकाले नारीणां पाणिग्रहणसंस्कारः

डॉ. दीपिका दीक्षितः⁴⁶

प्रमुखशब्दाः

शोधसारः- संस्कृतवाङ्मये पुराणानां विशिष्टस्थानं वर्तते। भारतीयसंस्कृतेर्मूलं पुराणेषु द्रष्टुं शक्यते। पुराणेषु उक्तम्- पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणस्मृतम् इति⁴⁷ इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्⁴⁸ इयम् उक्तिः प्राचीनकालादेव विद्वत्सु विख्यातास्ति। अथर्ववेदेऽपि निगमितम्- ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टा जहिरै सर्वे⁴⁹ पाणिग्रहणसंस्कारः षोडशसंस्कारेषु सर्वतो भद्रः संस्कारोऽस्ति। चतुर्षु पुरुषार्थेषु कामोऽप्येकः पुरुषार्थो भवति। मानवः प्रजाविस्तरेण स्वविस्तारम् अमरतां च गच्छति। ऋग्वेदे प्रार्थनेयं कृता यत् प्रजाद्वाराऽमृतत्वं मोक्षे-प्रजाभिरन्ने अमृतत्वमभ्याम्⁵⁰ इह शोधपत्रे नारीणां पाणिग्रहणविषये पुराणतः सविस्तरं चिन्तनं विहितं वर्तते।

प्रायेण गृहसूत्राणां प्रारम्भो विवाहसंस्कारेणैव भवति। गृहस्य मधुरस्नेहमयवातावरणं पत्न्या सह प्रेममयजीवनं तत्फलस्वरूपं सन्तानपातनपोषणं च वैदिकसमयेऽपि बहुमन्यमानमासीत्। पाणिग्रहणसम्पादनसमये वरवधूभ्यां कृते कथयति पुरोहितो यत् 'त्वं मत्पतिना सह शतवर्षं यावत् सञ्जीव' इति वरेणोक्तम्- **मया पत्या प्रजावति संजीव शरदः शतम्**⁵¹ विवाहः स्वयं यज्ञो मन्यते स्म। यो मानवो विवाहं कृत्वा गृहस्थजीवने न प्रविशेत् स अयज्ञीयो वा यज्ञहीनश्च निगद्यते स्म- **अयज्ञीयो वा एष योऽपत्नीकः**⁵² वैदिकयुगे यज्ञोऽनिवार्य आसीत्। गृहस्थः स्नातकीभूय यज्ञाग्निं स्वगृहे प्रज्वालयामास, परं च यज्ञः पत्नीं बिना पूर्णो न भवति स्म। अतएव पाणिग्रहणसंस्कारः समेषां कृतेऽनिवार्य आसीत्। याज्ञवल्क्ये एकपत्नीमरणानन्तरं यज्ञकर्मणि द्वितीयपत्न्यर्थं त्वरितं विवाहं कर्तुमादिशति -

दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवर्णीं पतिः।

आहरेद्विधिवद्धारान्नग्निं श्वैवातिवमवयन्।⁵³

शबरस्वामिना गृहस्थाश्रममुपेक्ष्य याज्ञिकधर्मकर्मपालनं कृत्वा ब्रह्मचारिणां प्रवर्तनशब्देषु निन्दन् व्याधायि-

अपुंस्त्वं प्रच्छादयन्तोऽष्टाचत्वारिंशदवर्षाणि ब्रह्मचर्यं चरितवतः।⁵⁴

यदा ऋणत्रयाणां सिद्धान्तस्य विकासोऽभवत् तदा विवाहस्य कृते अधिकाधिकमहत्त्वं पवित्रता च सम्भवत्। यतो हि पुत्रप्राप्तिं बिना पितृ-ऋणतो मुक्तिर्नाहि भवति।

⁴⁶ प्राक्तनशोधच्छात्रा-केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, लखनऊ

⁴⁷ वायुपुराणम् - १/६०

⁴⁸ महाभारतम् - वि. १/२६७

⁴⁹ अथर्ववेदः - १/१/७/२४

⁵⁰ ऋग्वेद संहिता - ५/४/१०

⁵¹ ऋग्वेद संहिता - १/४/१/५२

⁵² तैत्तिरीयब्राह्मणम् - २/२/२/६

⁵³ याज्ञवल्क्ये, अ. - २ विवाहप्रकरणम्, श्लोक-८९

⁵⁴ शाबरभाष्यम्, १/३/४

ऋग्वेदे पुत्रेच्छा अनेकरथलेषु बहुलतया अभिव्यक्तिकृता आसीत्⁵⁵ पाणिग्रहणमन्त्रेषु वरवधू द्वारा समुच्चारयति पुरोहित यद् उत्तमसन्तानाय तव पाणिग्रहणं करोमि⁵⁶ पुरोहितो वरवधूकृते आशीर्वादं ददन् दशपुत्रोत्पादनस्याऽदेशं दत्तवान्⁵⁷ महाभारते बहुस्थतेषु विवाहप्रयोजनं सन्तानोत्पादनमेव प्रादर्शितं⁵⁸ पाणिग्रहणसंस्कारेणैव त्रिवर्गस्य पूर्तिर्भवति⁵⁹ मनुनाऽपि प्रोक्तम् -

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।

तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥⁶⁰

नारीणां जीवने विवाहस्य प्रधानता

नारीजीवने विवाहस्य प्रधानतया बहुकारणानि भवन्ति। यथापुरुषः स्वतन्त्ररूपेण चतुर्विधपुरुषार्थसम्पादने सहचारिबिना समर्थो न भवति तथैव नार्यः अपि स्वस्वार्थं योग्यसहचारिणं वाञ्छति। नारी जीवने विवाहस्य प्रधानतया प्रमुखकारणानि त्रीणि सन्ति -

1. नारीजीवनस्याबलात्त्वम्
2. आर्थिकपरदात्मनत्वम्
3. चंचलस्वभावविवेकाभावत्वं चेति।

नारीणांभूषणं लज्जा सतीत्वं पातिव्रत्यं चास्ति। एषां रक्षा परमाऽवश्यकी वर्तते। शरीरकोत्पादनं टप्पायाऽपि नारीशरीर संयत्नं पुरुषोपेक्षया अत्यधिककोमलं तथा तासाम् आङ्गिकभेदोऽपि अवलात्त्वयौतकोऽस्ति। नारीणाम् अवलात्त्वस्यैव कारणं समये समये तासां संसारे कुष्टपिपात एव। महाभारतनुसारं पतिहीनां स्त्रियमेव कामयन्ते सर्वेऽपि जनाः, मांसभोगिनो हि पक्षिणो भूमिपतिनां मांसखण्डमिव-

उत्सृष्टमामिषं भूमौ पार्थयन्ति यथा स्वगाः।

पार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम्॥⁶¹

भारतीयसंस्कृतौ नारीमर्यादा सदैव सर्वत्र संरक्षणीया तथा विशेषरूपेण ध्यानं प्रदेयम्। अत्र च विषये धर्मशास्त्राणां स्पष्टया अध्यादेशः -

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षति स्थविरं पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥⁶²

मनुवत् पुराणेषुपि नारीणां संरक्षणं स्वतन्त्रता च पुरुषद्वारेव तथा तेषां निर्देशनाधारोपरि सम्भवत् -

रक्षेत् कन्या पिता बाल्ये यौवने पतिरेव ताम्।

⁵⁵ ऋग्वेद संहिता १/११/२०; १/११/१३

⁵⁶ ऋग्वेद संहिता १/०/८/३६

⁵⁷ ऋग्वेद संहिता १/०/८/४/४५

⁵⁸ महाभारतम् ३/१७/१९, १९

⁵⁹ मनुस्मृति १/१८

⁶⁰ मनुस्मृति १/१६

⁶¹ महाभारतम्, अतिपर्व १६०/१२

⁶² मनुस्मृति १/३

वार्द्धवये रक्षयेत्पुत्रो हन्यथा ज्ञातयस्तथा।⁶³

अर्थात् कन्यारक्षा वात्स्यायनाणां पित्रा यौवने पत्या वृद्धवस्थायां पुत्रेण विधातव्या, पुत्रो यदि न स्यात्तर्हि ज्ञातिजनैरिति आर्थिक पराबलम्बनमपि नारीणां जीविकोपार्जने सतीत्वसंरक्षणे च वाधकीमित्यर्थं स्त्रीजनैः पतिरूपे स्वजीवन सहवसे मृगितोऽन्वेषितश्चेति नारीणां कचलप्रकृत्या सरलहृदयेन च कदापि ता दुष्टजनसंसर्गे समागत्य स्वाविवेककुण्ठितः सुदूरं वास्यन्तीति कृत्वा धर्मनीतिनिर्देशकैश्चैश्चासमये धर्मनीति मर्यादायां विवाह स्त्रीजनो निबद्धः।

विवाहस्याऽऽयुषो निर्णयः -

कन्याया विवाहस्याऽऽयुः सम्बन्धे वैदिककालाद् पैराणिककालं यावद् विवेचनस्यात्यः आवश्यकता अनुभूयते यतो हि एतदप्रदर्शनम् आवश्यकं भवति यद् विभिन्न परिस्थितिषु कन्याविवाहस्या आयुषि किञ्चित् परिवर्तनं समुपलभ्यते न वा कन्यायाः पूर्णशरीरविकासः पितृगृह एवासीत्।⁶⁴ सूर्यस्य पुत्र्याः सूर्याया विवाहः सोमेन सह तस्मिन्नेव समये सञ्जातो यदा सा युवतिरासीत् तथा पतिप्राप्तये समुत्सुकासीत्।⁶⁵ बोधायनगृहसूत्रानुसारेण वधूजनस्य रजस्वला सम्भावनायां विचारः क्रियते।⁶⁶ रामायण-महाभारतसमयेऽपि विवाहसमये कन्याः प्रौढतां गता आसन् -

पतिसंयोग सुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।

चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनशादिवाधनः।⁶⁷

स्मृतिकारैर्विवाहयोगकन्याः पञ्चश्रेणीषु विभज्यन्ते।⁶⁸ प्रथमा नाग्निका, द्वितीया गौरी अष्टवार्षिका, तृतीया रोहिणी तथा नववार्षिका, चतुर्थी कन्या तथा दशवार्षिका, पञ्चमी रजस्वला तथा दशवर्षतोऽधिकायुष्मती गोभिलः।⁶⁹ तथा मानवगृहसूत्रकारो⁷⁰ नाग्निकां विवाहाय सर्वोत्तम मन्यते। ब्रह्मपुराणानुसारमपि शैशवावस्थायामे कन्याविवाहो विधातव्यः-

यावत्तज्जां न जानाति यावत् क्रीडति पांसुभिः।

तावत्कन्या प्रदातव्या न चेत पित्रोऽधोगतिः।⁷¹

अग्निपुराणेऽपीत्रसमुत्पत्तेः वर्तते -

पूर्वं स्त्रियः सुरेभुक्ताः सोमगन्धर्ववलिभिः।

भुञ्जन्ते मानुषाः पश्चान्मैता दुर्ष्यान्त केनचित्।⁷²

⁶³ गृह्यपुराणम् - भागः अ.५५

⁶⁴ ऋग्वेद संहिता १०/८५/१२-२२

⁶⁵ ऋग्वेद संहिता १०/८५

⁶⁶ बोधायनः ४/२/१६

⁶⁷ रामायणम् १/११/३४

⁶⁸ पारस्करगृह्यसूत्रम् ४/५/या.सू.१/२२

⁶⁹ गोभिल स्मृतिः २/१

⁷⁰ मानवगृह्यसूत्रम् १/७/१२

⁷¹ ब्रह्मपुराणम् - १६५/१३-१४

⁷² अग्निपुराणम् - ६७/१९

अस्वैवाधारेऽपि विष्णुपुराणेऽपि कन्यावर्योर्विवाहवस्थाया अनुपात 1/3 स्थापितम् -

वर्षैरकगुणां भार्यामुद्देहत् त्रिगुणः स्वयम्⁷³

पिता कन्याकृते स्वयंवरं स्वयामास, अथवा अस्मिन् कर्मणि ताः स्वानुकूलं योग्यवरं स्वेच्छया अन्वेषयेयुः। उदाहरणार्थं कथयामो वयम् -

1. कृष्णस्य रूढिमण्या सह विवाहः।⁷⁴
2. अनिरुद्धस्य उपया सह विवाहः।⁷⁵
3. काशीनरेशस्य सुबाहोः पुत्री शशिकला अयोध्यायाः भूपतेः ध्रुवसन्धेः पुत्रं सुदर्शनं स्वेच्छया वृतवती।⁷⁶
4. मन्दोदर्या अपि विवाहः स्वेच्छया बभूवा तस्या भगिन्या इन्दुमत्याः स्वयंवरशोऽपि यौवनप्राप्त्यनन्तरमेव बभूवा।⁷⁷
5. सीताया विवाहोऽपि पूर्णयौवनप्राप्त्यनन्तरमेव समजनीति स्वयं सीताया ववसि श्रौतव्यम् सा अनुसूयां प्रति समवोचत्।⁷⁸
6. अर्जुनस्य सुभद्रया सह विवाहः।⁷⁹
7. अर्जुनस्य सुभद्रया सह विवाहः।
8. सावित्री सत्यवतं स्वीकृतवती।⁸⁰

पौराणिक युगस्य युवतिभिः स्वब्रह्मचर्यतपोबल धर्मभीतिसतीत्वश्रद्धायाः पालनकर्त्रिभिर्भक्तुः पितृश्वानुमतिं प्राप्य योग्यवरं प्राप्तवती आसीत् प्रसङ्गेऽस्मिन् उपाऽनिरुद्धसंवादकथने उपावचनं श्रौतव्यम् -

पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वरय च।

कन्या वरं न याचेत् धर्म एष सनातनः।⁸¹

विवाहस्य प्रकारः

भारतीय धर्मग्रन्थेषु अष्टप्रकारस्य विवाहस्य समुत्पत्तेः दरीट्यते ते वक्ष्यं सन्ति -

ब्राह्मो देवस्तथैवाथः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।⁸²

उपर्युक्त अष्टविधिविवाहस्य भागद्वयं विभज्य स्थापितम् एषु विवाहेषु प्रथमाश्चत्वारः प्रशस्ताः कथ्यन्ते, इतरे चत्वारो विवाहा अप्रशस्ता भवन्ति। पुराणसमये अधिकतया प्रशस्तविवाहानामेव प्रचलनमासीत्।

⁷³ विष्णुपुराणम् - ३०/१०/१६

⁷⁴ श्रीमद्भागवतम्, विष्णुपुराणम् (पञ्चमांशः)

⁷⁵ ब्रह्मवैवर्तपुराणम्, विष्णुपुराणम् (पञ्चमांशः)

⁷⁶ देवीभागवतपुराणम्- पूर्वार्धे तृतीयस्कन्धे एकोनिविंशोऽध्यायः, श्लोक. -९-१३

⁷⁷ देवीभागवतपुराणम्- पूर्वार्धे तृतीयस्कन्धे ३-५

⁷⁸ रामायणम् १/११/३४

⁷⁹ श्रीमद्भागवतपुराणम्

⁸⁰ देवीभागवतम् - अष्टस्कन्धे, अ.श.०८

⁸¹ ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

⁸² मनुस्मृति ३/१२

1. ब्रह्मविवाहः - ब्रह्मविवाहो विवाहस्य सर्वोत्तमा पद्धतिकथ्यते। अस्मिन् विवाहे कन्यायाः पिता गृणत्वं शीलवन्तं च वरमामन्त्र्य तं विधिवत् सत्कृत्य च दक्षिणया सह यथाशक्ति वस्त्राभूषणैस्तत्कृता कन्यां तस्मै अदात् -

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।

आहूय दानं कान्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।⁸³

स्मृतयः पुराणानि चार्य विवाहस्य सर्वप्रकारेण अधिकाधिक सम्मानं प्रशंसां च प्रकुर्वन्ति। पुराणेषु विहितः पार्वत्याः शिवेन सह विवाहः⁸⁴ स्वायम्भुवमानोः कन्यायाः कर्दम् ऋषिणा सह विवाहः⁸⁵ कर्दम्-ऋषेः कन्याया अनुसूयाया विवाहः⁸⁶, सीताया रामेण सह विवाहः⁸⁷, मदातासायश्च विवाहः⁸⁸ - इमे सर्वे ब्रह्मविवाहाः सन्ति। दुर्वाससा सह कन्दलिन्या विवाहः⁸⁹, कृष्णेन सह राधाया विवाह इत्यादयश्च⁹⁰

2. दैवविवाहः - अस्मिन् प्रकारे कन्या पिता कन्याम् अत्कृत्य पौरोहित्य कर्मकारकाय श्रुतिवजे अदात्। श्रुतिवजे विवाहिते कर्मणि दद्यात् अत्कृत्य स दैवः। चौधायन अनुसारे कन्या दक्षिणारूपेण प्रदीयते स्म -

दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वैदृत्विजे स दैवः।⁹¹

अस्य दानस्य दैवयज्ञावसरे सत्वाद् अस्यैव नाम दैवविवाहः।

3. आर्षविवाहः - अस्मिन् कन्यायाः पिता वरसकाशाद् यज्ञादिधर्म विहितकार्य सम्पादयितुमेकां द्रव्यं वा गामादाय कन्यादानं करोति -

एकं गोमिशुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।

कन्याप्रदानं विधिवद् आर्षो धर्मः स उच्चयते।⁹²

धर्मनिमित्तो ह्यार्षो सम्बन्धो न तोभनिमित्तकः। गोमिशुनग्रहणं च स्वयं कन्योपकरणदाना समर्थस्य तद्दानार्थे वेदितव्यम्।⁹³

4. प्राजापत्यविवाहः - कन्यायाः पिता योग्यवरेण सह एतद्देश्य कन्यां विवाहयति यत् तौ साकं धार्मिक कर्तव्यं पालयेताम्।⁹⁴ सहधर्मं वरत इति प्राजापत्यः। मनोः अनुसारम्-

सहोभौ वरतां धर्मं प्राजापत्यः स ईरितः।⁹⁵

अस्या एव विवाहपद्धतेः पालनं सूत्रस्मृतिषु-पुराणकालेषु च ब्रह्मनात्रायामासीत्।

⁸³ मनुस्मृति ३/२७

⁸⁴ स्कन्दपुराणम् २६

⁸⁵ भागवतपुराणम् ३/२२-२५

⁸⁶ भागवतपुराणम् ६/२४२/२४६

⁸⁷ पद्यपुराणम् ६/२४२/२४६

⁸⁸ मार्कण्डेयपुराणम्

⁸⁹ ब्रह्मवैवर्तपुराणम्-श्रीकृष्णजन्म खण्डः १४

⁹⁰ ब्रह्मवैवर्तपुराणम् - श्रीकृष्णजन्म खण्डः १५

⁹¹ चौधायनस्मृतिः ११/५

⁹² मनुस्मृति ३/२८

⁹³ वीरभद्रोदयसंस्कारः, भागः २

⁹⁴ आश्वलायनगृह्यसूत्रम् २/६

⁹⁵ स्कन्दपुराणम्- इन्द्रहमखण्डः, अ. छ. श्लोक. २८

5. आसुरो विवाहः - मनुष्येत्या अस्मिन् विवाहे वराय कन्यायै सम्बन्धिनां च कृत यथाशक्तियनादिकं दत्त्वा स्वेच्छया कन्याया सह विवाहो भवति स आसुर इति प्रोच्यते -

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शनिततः।

कन्याप्रदानं स्वाच्छन्दादासुरो धर्म उच्यते।⁹⁶

बोधायनेन स्पष्टदेव प्रोक्तं, यद् धनक्रीता नारी पत्नीस्थानं नहि प्राप्तुं प्रभवति, सा तु केवलं दासीकल्पा नारी मन्तव्या-

क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।

सा न दैवे न सा पित्र्ये दासी तां काश्यपोऽब्रवीत्।⁹⁷

पुराणकाले त्वीटश विवाहपद्धतेः प्रचलनं कुत्रापि न परिदृश्यते। भविष्यपुराणेऽपि प्रोक्तम् -

न कन्यायाः पिता विद्वान् गृहीयाच्छुल्कमण्वपि।⁹⁸

6. गान्धर्वविवाहः - मनुष्येत्या कन्याया वरस्य च अन्योन्यानुगुणेण स्वेच्छया यः परस्परसंयोगो भवति स एव गान्धर्व इति कथ्यते -

इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।

गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः।⁹⁹

अस्या गान्धर्वविवाहपद्धत्याः प्रचलनं प्रायशः क्षत्रियेषु एवासीत्। उदाहरणार्थम् उपाऽनुरूद्धयोर्विवाहः¹⁰⁰, पुरुरुर्योर्विवाहः¹⁰¹ इत्यादयो विवाहा गान्धर्वपद्धत्या समजनि यतोहि मूलमस्य पारस्परिककर्षणे प्रेमिण च निहितमस्ति -

गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति स्नेहानुगतत्वात्।¹⁰²

मारयित्वा क्षतविक्षतीकृत्य बलपूर्वकं हरणमेव राक्षसविवाह इति कथ्यते -

हत्वा छित्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रूदतीं गृह्यात्

प्रसह्य कन्याकरणं राक्षसो विधिरूच्यते।¹⁰³

क्षत्रियाणां कृते राक्षसविवाहः प्रशस्तः प्रदर्शितो भवति -

“राक्षसं क्षत्रियस्यैकम्”।¹⁰⁴

“गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्मो क्षत्रियस्य तौ स्मृतौ”।¹⁰⁵

⁹⁶ मनुस्मृति ३/३२

⁹⁷ बोधायनधर्मसूत्रम्

⁹⁸ भविष्यपुराणम्

⁹⁹ मनुस्मृति ३/३२

¹⁰⁰ भागवतपुराणम्

¹⁰¹ वायुपुराणम् ९१

¹⁰² गोभिलधर्मसूत्रम्

¹⁰³ मनुस्मृति

¹⁰⁴ भविष्यपुराणम्

¹⁰⁵ मनुस्मृति ३/२६

कृष्णस्य रूविमण्या सह एवमेव विवाहः सञ्जातः।¹⁰⁶ नाभागेनापि सुप्रभया सह यक्षसपत्न्या विवाहः कृतः।¹⁰⁷

प्रसह्य कन्याहरणाद् यक्षसो निन्दितः पताम्।¹⁰⁸

7. पैशाचविवाहः - अयं च सर्वाधिकनिकृष्टः प्रकार आसीत्। सुप्त प्रभुत्वविषमस्थितायाः कन्याया हरणमेव पैशाचविवाह इति मनुष्येति यश्च कश्चन मनुष्यः सुप्तया मताया कन्याया सह रमते स एव पैशाच इति -

सुप्तां मतां प्रमतां वा रक्षो यत्रोपगच्छति।

स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।¹⁰⁹

इक्ष्वाभुपुत्रो राजा दण्डः शुकचार्यस्य पुत्र्या अरजाया उपरि बलाद् अधिकारं कर्तुमैच्छत् परन्तु कन्या द्वारा पितृनिवेदनान्तरे शुकचार्यशापेन स नाशं गतः।¹¹⁰ अपरं च

छलेन कन्याहरणात्पैशाचो गर्हितोऽष्टमः।¹¹¹

यथा यथा मानवः शनैः शनैः स्वप्रगतिपथं परिवर्धयामास तथा तथा तस्मिन् धार्मिक भावना परिवर्धते स्म। यस्य परिणामोऽयमेव सञ्जातो यद् विवाह संस्कारः केवलं सामाजिकवन्धनमेव न, अपि त्वेकानि कार्यधार्मिक कर्तव्यत्वेन ज्ञायते स्म। धर्माभिमानिनी भारतीयनारी आध्यत्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविकेति त्रिविधोन्नतितः पथभ्रष्टा मा भवेदिति हेतोः शास्त्रेषु नारीजीवने विवाहस्य प्रधानता आवश्यकत्वेन पैशाचकेतुध्वरैरिति अङ्गीकृतः।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- आर्. सेतुमाधवाचार्यः, वायुपुराणम्, मैसूरु : श्री जयवामराजेन्द्र ओडेयर्, 1947.
- आस्थानविद्वान् पाटणकर चन्द्रशेखरभट्टः, मार्कण्डेयपुराणम्, मैसूरु : श्री जयवामराजेन्द्र ओडेयर्, 1953.
- कुल्लुक भट्टः, मनुस्मृतिः पण्डित रामेश्वरभट्ट, वाराणसी : चौखंभासंस्कृत प्रतिष्ठानम्, 2015.
- चारुदेवशास्त्री, महाभारतवचनमृतम्, दिल्ली : परिमलपब्लिकेशन्स, 1983
- दिदिनि वंशीकृष्णः, पुराणलक्षणमीमांसा, मैसूरु : कणिवे प्रकाशन, 2018.
- दुर्गासप्तशतीः, रामनारायणदत्तशास्त्री गोरखपुरम् : गीताप्रेसः गोरखपुरम्, 2013.
- प. थानेशचन्द्र उग्रैति, विष्णुपुराणम्, देहली : परिमल पब्लिकेशन्, 2011.
- पि. एस्. शेषगिरि आचार्यः विद्वान् श्रीमद्भागवतम्, बेङ्गलुरु : पूर्णप्रज्ञाशोधमन्दिरम्, 2001
- वेदपुर कृष्णप्प, ब्रह्मवैवर्तपुराणम्, श्री जयवामराजेन्द्र ओडेयर्, मैसूरु, 1950.
- महाभारतम्, गोरखपुर : गीताप्रेस, 2009

¹⁰⁶ भागवतपुराणम्

¹⁰⁷ मार्कण्डेयपुराणम् - १०

¹⁰⁸ स्कन्दपुराणम् ब्रह्मखण्डः

¹⁰⁹ मनुस्मृति ३/३४

¹¹⁰ वामनपुराणम्

¹¹¹ स्कन्दपुराणम् - 3 खण्डः, अ. 4, श्लोक-30

- व्याससंहिता, प. १५मसुन्दर त्रिपाठी, वाराणसी : चौखंभासंस्कृत भवनम्, 2008.
- श्रीमद्भागवतम्, गोरखपुर : गीताप्रेस, 2008
- श्रीमन्महाभारतम् , दिल्ली : नागपब्लिशर्स, 2005
- सुभाष विद्यालङ्कार, महाभारतसूक्तिसुधा, दिल्ली : प्रतिभाप्रकाशन, 2009



Study Of Palāśa Plant on Indian Perspective

Dr Ishwara Prasad A ¹¹²

Key words : *Palāśa*, Butea monospermic, flame of the forest.

Abstract- The paper is prepared for the study of *Palāśa* plant tracing its uses and benefits according to Indian tradition. The study is done on having literature survey identifying its botanical nature, ethnotherapeutics pharmacological uses and religious significance. In this study it is observed that the *Palāśa* plant having medicinal properties is being used in various religious performances. The importance of the plant is also identified through associating it to Moon, Purva constellation and Karkataka rasi. The study reveals that our ancient Indians had scientifically analyzed the tree and identified its proper use, giving religious touch.

The Plant *Palāśa* is native of Indian subcontinent and south east Asia, found throughout India and Burma, often gregarious Ceylon, North West Himalaya. *Palāśa* plant belongs to family **Leguminosae** fabaceae with botanical name **Butea monosperma [(Lam.) Taub.] with synonym B.froncosa**, having common names flame of the forest, bastard teak, and parrot tree. It is having synonyms as - पलाशः किशुकः पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पकः। क्षाश्रेष्ठो वातपोथो ब्रह्मवृक्षः समिद्धरः॥¹

Palāśa is an erect, moderate - sized deciduous tree, reaching a height of 15 mts, with a cracked trunk and irregular branches. The bark is thick, fibrous, grey, exfoliating in small irregular pieces; exuding from cut and fissures a red juice which hardens into a ruby coloured gum or grey brown white or brown, if cut up fresh and quickly seasoned, soft and durable. The trunk is crooked and irregular. Young shoots are densely pubescent. The leaves are large, rachis slender pubescent when young, swollen at base, stipules small, linear - lanceolate deciduous. The leaflets are unequal, the terminal the largest and rhomboidal, orbicular, the lateral ones ovate-oval, dilated in lower half all very obtuse, glabrous above when mature, closely and finely tomentose and with much raised reticulation beneath. The flowers are large on velvety drooping pedicels, long, 2-3 together from the swollen nodes of rigid stout racemes coming off from woody tuberosities. The bracts are small, deciduous calyx finely velvety outside, lined

¹¹² Assistant professor, Dept of Sanskrit, Samhita & Siddhantha, SDM College of Ayurveda & Hospital Thanurhalla, Hassan Karnataka - 573201

with white silvery hair. Segments are acute. The keel is very deeply boat-shaped, acute. The pod is pendulous on a densely, woody stalk, obtuse thickened at sutures, leathery, transversely veined, densely but finely pubescent, especially at end. The seed is flat broadly oval, smooth reddish brown. The flowers are orange-scarlet, very silvery outside, with silky hair so that the buds are white.

Chemical Composition: Plant contains coumaran one glucoside palasitrin, monospermoside and isomonospermoside. Stem bark contains medicarpin, lupenone, lupeol, sitosterol, isoflavones 5-methoxygenisetin and prunetin. Leaves contain. Flowers contain flavonoids butrin, isobutrin, free sugars and free amino acids. Seeds contain palasonin, yields oil. Seed coat contains methylallophanic acid. Sap contains chalcone butein.

Ethnotherapeutics:

Various parts of the plant like Root, leaves, petioles, flowers, seeds and exudate are used in improving health by ancient Indians. In case of burning sensation in fever, the tender leaves of *Palāśa*, *Badari* or *Nimba* should be applied on the body to alleviate burning sensation. पलाशस्य बदर्या वा निम्बस्य मृदुपल्लवैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं हन्याद्वाहयुतं ज्वरम्॥²

In diarrhoea decoction of fruit (seeds) mixed with milk should be given followed by intake of warm milk according to strength. By this, impurity is eliminated and thus diarrhoea is checked. व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा। पलाशफलनिर्यूहं युक्तिं वा पयसा पिबेत्॥ ततोऽनुकोष्णं पातयन् क्षीरमेव यथाबलम् प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः³॥ पलाशफलनिर्यूहं पयसा सह पाययेत् ततो अनुपाययेत् कोष्णं क्षीरमेव यथाबलम् प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः पलाशवत् प्रयोच्या वा त्रायमाणो विशोधिनी॥⁴

During intrinsic haemorrhage : a) One should take ghee cooked with the juice of *Palāśa* plant cooled and mixed with honey or the same processed with juice of *Nyagrodhadi* drugs. पलाशवृक्षस्वरसे विपक्वं सर्पिः पिबेत् क्षौद्रयुतं सुशीतम् वनस्पतीनां स्वरसैः कृतं वा सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा॥⁵

b) Ghee cooked with juice of *Palāśa* petioles and the paste of the same should be given with honey. It checks bleeding. पलाशवृक्षस्वरसे तद्गर्भं च घृतं पिबेत् सकौद्रं तच्च रक्तघ्नं ॥⁶ c) In *Siddhabhesajamanimala* (4.304) it is mentioned that flowers of *Palāśa* 160 gm mixed with double sugar should be taken with milk. It checks intrinsic haemorrhage and also preserves the beauty of woman⁷.

To eradicate worms : a) Decoction of *Palāśa* seed or paste of the same with rice-water should be taken. पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तण्डुलाबुना॥⁸ b) Decoction of *Palāśa* seed mixed

with honey or paste of the same with buttermilk should be taken. It destroys worms. पलाशबीजस्य रसं पिबेन्माक्षिकसंयुतम्। पिबेत्तद्वीजकल्कं वा मधुना क्रिमिनाशनम्⁹

In Colic : Soup prepared with Palāśa mixed with sugar should be taken in colic. पलाशं धान्वनं वाऽपि पिबेद्युषं ॥¹⁰

Vaidya manorama **mentions** Palāśa seeds, Udumbara fruits and Marica taken together alleviates cough within three days¹¹.

Filaria : Juice of Palāśa roots mixed with oil of yellow mustard in equal quantity should be taken¹².

Palāśa is useful in Eye diseases (Paittika conjunctivitis) a) Flowers of Palāśa should be rubbed with honey and used as collyrium. चूर्णं कुर्यादञ्जनार्थं रसो वा स्तन्योपेतो घातकीस्यन्दनाभ्याम् योषितस्तन्यं शतकुम्भं विष्टं क्षौद्रेपेतं कैशुकं चापि पुष्पम्।¹³ b) Exudate of Palāśa mixed with

sugar and honey should be used as collyrium. पलाशं स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थं शल्लक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम्।¹⁴

c) Pilla semisolid extract of Palāśa flowers or Apamarga should be used as collyrium. रसक्रियां वा त्रिफलाविपक्वां पलाशपुष्पैः खरमञ्जेवां।¹⁵

In corneal opacity Karanja seeds impregnated many times with the juice of Palāśa flowers is made into a wick. Its application a collyrium destroys corneal opacity.

पलाशपुष्प स्वस्वैर्बहुषः परिभाषितम् करञ्जबीजं तद्वर्तितुष्टैः पुष्पं विनाशयेत्।¹⁶

In Paittika cataract, juice of Palāśa, Rohitaka and Madhūka mixed with honey and wine-scum should be made into semi-solid extract and then used as collyrium.

पलाशरोहीतमधुकृजा रसाः क्षौद्रेण युक्ता मदिराग्रमिश्रिताः॥¹⁷

In Scorpion-sting, Palāśa seeds impregnated with arka latex should be made into a paste and applied locally. It removes pain. पलाशबीजं शूलघ्नो लेपोऽर्क क्षीरभाषितम्।¹⁸

In Pumsavana one leaf of Palāśa pounded with milk should be taken by the pregnant woman. It makes her achieve a powerful son. पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुधेन गर्भिणी। पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥(चिकित्साप्रकरणम् 70.30)¹⁹

As Rasayana Palāśa seeds and Vidanga mixed with juice of Amalaki fruits, honey and ghee should be taken for a month. It makes the old young. पलाशबीजानि विडङ्गयुक्तान्युन्मिश्रितान्यामलकीफलानाम् रसेन मध्वाज्ययुतानि पीत्वा वृद्धोऽपि मासात्तरुणत्वमेति।

As contraceptive Palāśa seed is used. Palāśa seeds pounded finely and mixed with ghee and honey should be applied locally in vagina during season. It acts as contraceptive. ऋतौ घृतक्षौद्रयुतैः

पलाशबीजैः प्रलेपं मसृणप्रपिष्टैः। करोति या स्त्री भगन्ममध्ये न सा भवेद् गर्भवती कदाचित्।²⁰

Pharmacology :

Palāśa flowers yield yellow dye. Flowers are antidiarrhoeic, diuretic, and antioestrogen. Leaves are astringent, diuretic, and aphrodisiac. Root and leaves clear the eyesight. Root or Flower juice is given to induce infertility in women. Petals are antifungal, used for diarrhoea, leprosy, haematuria in sheep. seed powder is anthelmintic and useful in ureteric calculus, delirium. Palasonin in seed is spasmogenic and is used for Ascarids, produce nausea, emesis, giddiness, colic nephrotoxic. Seed paste is rubefacient, used in ringworm and maggot wound. Bark is pungent, astringent, anthelmintic insecticide against house flies; useful in tumour and piles. Gum fresh is used for septic sore throat, haematuria and malaena.

Devotional Importance:

The Palāśa leaves are sacred to Narasimha. The plant is held sacred to Moon, Pūrva (Pubba, Hubba) constellation and Karkāṭaka rāśi. The flowers yield a brilliant but fleating yellow dye, much used in India, especially in the holi festival. Palāśa tree is sacred to soma (Moon). The flowers are offered to the gods. The Palāśa is sometimes represented as a sacred tree of Buddhists. This tree is supposed to be imbued with the immortalizing soma, the beverage of the gods. "This tree is supposed to have sprung from the feather of a falcon imbued with the soma"²¹. The trifoliolate leaves, middle leaf-let is supposed to represent Visnu, the left Brahma and the right Shiva. The leaves are used as platters on the occasion of the Upanayana and chowla. The dry twigs used as Samidhas, during homa or sacred fire like Navagraha homa, vāstu - shanti; i.e. entrance into a newly built house or one acquired from a non-Hindu. The stem is used as a staff (daṇḍa) in upanayana.

Conclusion: Preservation of useful plants in India is observed since vedic period. Temple premises were also used to preserve plants considering many plants being used in patra-pūjā and puṣpa-pūjā. Palāśa plant is having its uses in ethnotherapy, pharmacology and also religiously. In India we observe the human friendly plants used both medicinally and religiously considering them eco-friendly.

Endnotes

1. Bhāvaprakāśanighaṇṭu P.535
2. Bhavaprakasha of Bhavamishra, Edited by Bhisagratna Pandit Sri Brahma Shankar Mishra, Cikitsāsthāna. 1.360.
3. Aṣṭāṅghr̥daya Cikitsāsthāna 9.68-69
4. Caraka Samhita by Agnivesha, Edited by Vaidya Jādvaji Trivikramji Ācārya Cikitsāsthāna 19. 59.60
5. Suśrutasaṁhitā of Suśruta Uttarasthāna 45.25
6. Aṣṭāṅghr̥daya Cikitsāsthāna 2.44
7. Siddhabhesajamanimala (4 VM.42.13304) as mentioned in Classical Uses of Medicinal Plants
8. Suśrutasaṁhitā of Suśruta Uttarasthāna 54.25.
9. Bhavaprakasha of Bhavamishra, Edited by Bhisagratna Pandit Sri Brahma Shankar Mishra, Cikitsāsthāna. 7.21
10. Suśrutasaṁhitā of Suśruta Uttarasthāna 42.107.
11. Vaidya manorama (3.16) as mentioned in Classical Uses of Medicinal Plants
12. Vaidya manorama (42.13) as mentioned in Classical Uses of Medicinal Plants
13. Suśrutasaṁhitā of Suśruta Uttarasthāna 10.9
14. ibid.10.7
15. ibid.12.50
16. Bhavaprakasha of Bhavamishra, Edited by Bhisagratna Pandit Sri Brahma Shankar Mishra, Cikitsāsthāna..63.205
17. Suśrutasaṁhitā of Suśruta Uttarasthāna 17.41
18. Ashtanga Sangraha Uttarasthāna.43.70
19. Bhavaprakasha of Bhavamishra, Edited by Bhisagratna Pandit Sri Brahma Shankar Mishra, Cikitsāsthāna.70.30
20. Classical Uses of Medicinal Plants by PV Sharma P. 234-235.
21. Sacred plants of India by Brahma Prakash Pandey

Bibliography

1. Suśrutasaṁhitā of Suśruta, Edited by Vaidya Jādvaji Trivikramji Ācārya & Nārāyaṇa Rāma Ācārya, Publication : Chaukhamba Sanskrit Sansthan Varanasi, Year 2015
2. Bhavaprakasha of Bhavamishra, Edited by Bhisagratna Pandit Sri Brahma Shankar Mishra, Publication : Chaukhamba Sanskrit Sansthan Varanasi, Year : 2003
3. Indian Medicinal Plants Volume 1, P.S Voarier's Arya Vaidya Shala Kottakkal Publication : Orient Longman, Year : 1995

4. Bhavaprakasha Nighantu of Sri Bhavamishra Commentary by Dr KC Chunekar, Edited by Dr GS Pandey, Published by Chaukhamba Bharati Academy Varanasi, Year : 2006.
5. Sacred plants of India Author : Brahma Prakash Pandey Publication : Sree Publishing House, 1049, Kotra Chhajju Pandit Model Basti, New Delhi. Year : 1989
6. Caraka Samhita by Agnivesha, Edited by Vaidya Jādvaji Trivikramji Ācārya, Publication : Chaukhamba Orientaliya Varanasi, Year : 2007
7. Ashtanga Sangraha of Vagbhata, Edited by Dr Shivprasad Sharma, Publication : Chaukhamba Sanskrit Series Office Varanasi.
8. Medicinal Plants of India Volume 1 Karnataka, Author : SN Yoganarasimhan Publication : Interline publishing Pvt Ltd Bangalore Year 1996
9. Indian Medicinal Plants Author : B. D. Basu
10. The wealth of India, Publication : The Director CSIR New Delhi, Year : 1950
11. Classical Uses of Medicinal Plants Author : Priya Vrat Sharma Publication : Chaowkhamba Vishwabharathi Oriental Publishers and Distributers Varanasi, Year : 1999

भारतीयज्ञानपरम्परायां शिक्षाशास्त्री व्यासःडॉ. सुशान्तहोता¹¹³

प्रमुखशब्दाः - व्यास इति नाम्नः वैशिष्ट्यम् । व्यासस्य परिचयः । ज्ञानावतारः व्यासः । व्यासस्य कृतयः । व्यासोक्तदिशा शिक्षा चेत्यादयः ।

शोधसारः- प्राचीनकालादेव सकलभूतलोकके अस्माकं भारतवर्षे ज्ञानगुरुरूपेण सुशोभितं पूजितञ्च वर्तते । अत्र सर्वेषामपि ज्ञानविज्ञानानां भाण्डागारः भवति अस्माकं संस्कृतवाङ्मयम् । संस्कृतवाङ्मयगङ्गाधारायां भारतीयसाहित्यानां ज्ञाननिरूपेण वैदिकसाहित्यानि लौकिकसाहित्यानि च निरन्तरं प्रवाहितानि दृश्यन्ते । वेद-वेदाङ्ग-ब्रह्मण-आरण्यक-उपनिषदादीनि वैदिकसाहित्यान्तर्गतानि भवन्ति । वाल्मीकिव्यासभासकालिदासादीनां साहित्यानि च लौकिकसाहित्यरूपेण प्रथन्ते । मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः स्वतपोबलेन ज्ञानचक्षुभ्यां दर्शं दर्शं संस्कृतवाङ्मयस्य मूलरूपं वेदं प्रणीतवन्तः । तदनु महर्षिः वाल्मीकिः रामायणरूपेण लौकिककाव्यं साहित्यं वा विरचयामास । एवं क्रमेण लौकिकसाहित्यस्य विकासोऽपि जातः । रामायणवत् व्यासकृतं महाभारतमहाकाव्यमपि लौकिकसंस्कृतवाङ्मयं सर्वथा परिपोषयति । किञ्च तत्प्रणीतश्रीमद्भागवतमहापुराणं ब्रह्मसूत्रञ्च लौकिकसंस्कृतसाहित्ये महत्त्वपूर्णं विभर्ति । एतेषां ग्रन्थरत्नानां परिशीलनेन प्रतीयते यत् आदिकविवाल्मीकिवत् पराशरात्मजः ब्रह्मविद् महर्षिव्यासोऽपि भारतीयज्ञानपरम्परायां समाजसुधारकरूपेण शिक्षाशास्त्रीत्वेन च ख्यातोऽस्ति । प्रस्तुते तेसोऽस्मिन् वयं महर्षिव्यासम् अधिकृत्य एतान् विन्दून् परिशीलयामः । यथा-

- व्यास इति नाम्नः वैशिष्ट्यम् ।
- व्यासस्य परिचयः ।
- ज्ञानावतारः व्यासः ।
- व्यासस्य कृतयः ।
- व्यासोक्तदिशा शिक्षा चेत्यादयः ।

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।

येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्ज्वालितो ज्ञानमयो प्रदीपः ॥

संस्कृतकाव्यकारेषु अन्यतमः, अत्यन्तं कुशाग्रबुद्धिसम्पन्नः, महाभारत-ब्रह्मसूत्र-अष्टादशपुराणानां प्रणेता, शिक्षाशास्त्री, समाजसुधारकः तपोनिष्ठः महर्षिव्यासः स्वज्ञानज्योतिभिः जगत्सर्वं प्रज्ज्वालयति प्रकाशयति च । भारतीयज्ञानपरम्परायाम् एतावत् पर्यन्तं ये केचन विविधप्रतिभाविमण्डिताः कवयः प्रादुर्भूताः तेषु अयं व्यासः शिक्षाशास्त्रित्वेन समाजसुधारकत्वेन च समाजे स्वप्रतिष्ठां प्रतिष्ठापयति । तत्प्रणीतब्रह्मसूत्र-महाभारत-पुराणादिषु

¹¹³ प्राध्यापकः, (शिक्षाशास्त्रविभागः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः श्रीसदाशिवपरिसरः, पुरी, ओडिशा

वर्णिताः सर्वेऽपि आध्यात्मिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-राजनैतिकविषयाः समाजे सामाजिकपरिवर्तनम् आनेतुं सक्षमाः भवन्ति । स्वजीवनकालाभ्यन्तरे अस्मै आभारतं विविधेषु आश्रमेषु स्थलेषु च गत्वा जनान् बोधयति स्म । व्यासस्य व्यक्तित्वेन कृतित्वेन च प्रभाविताः नैके कवयः तस्य काव्यानि उपजीव्यकाव्यरूपेण स्वीकृत्य नैकान् ग्रन्थान् विरचयन्ति ।

व्यास इति नाम्नः वैशिष्ट्यम् -

व्यास इति विस्तारयति इति व्यासः । अनया व्युत्पत्त्या भारतीयज्ञानविज्ञानस्य वेदार्थस्य विस्तारकः व्यास इति ज्ञायते बुध्यते च । यज्ञकार्यसम्पादनार्थं व्यासः वेदान् विभज्य संहितावतुष्टयेषु व्याख्यातवान् इति हेतोः वेदव्यासनाम्ना तथा च संक्षेपेण व्यासनाम्ना विख्यातः । एवं प्रकारेण सः सर्वलोककल्याणाय दुर्बोध्यान्यपि सकलानि वैदिकतत्त्वानि काव्यपुराणादिभिः सरलं वकार । तदुक्तं महाभारते-

ब्रह्मणो ब्रह्मणानां च तथानुगहाकाङ्क्षया ।

विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥ महाभारतम् 1 -/66/(88)

नैकैः नामभिः अभिहितः भगवान् व्यासः । यमुनायाः करिर्मथित् द्वीपे जातत्वात् सः द्वैपायनः इति ख्यातः । तदीयशरीरस्य कृष्णवर्णत्वात् कृष्णमुनिः इत्यपि तस्य प्रसिद्धिः । उभयोः पदयोः एकीकरणेन सः कृष्णद्वैपायन इत्यपि विश्रुतः । पुनश्च अस्मै हिमालयस्याङ्गभूते वदरिकाश्रमे स्थित्वा ग्रन्थरत्नानां रचनया निम्नोऽभूत् । तस्मात् वादरायण इति विदितः । किञ्चायं पराशरमुनेः सम्भवात् पराशर इत्यपि ख्यातः ।

व्यासस्य परिचयः -

महाभारतवचनानुसारं व्यासः सत्यवतीगर्भसम्भूतः महामुनेः पराशरस्य आत्मजः आसीत् । ब्रह्मणः मानसपुत्रेण वसिष्ठेन सह अस्य सम्बन्धः । अस्य परिवारिकपरम्परा प्रख्यातपथे एवं निर्दिष्टमस्ति । यथा -

व्यासं वसिष्ठनम्रारं शक्तेः पौत्रमकन्दमघम् ।

पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥



वर्तमानयुगीयव्यासस्य अयं परिवयः उपर्युक्तप्रकारेण प्राप्यते ।

परन्तु इतः पूर्वम् अपि अनेके व्यासाः अभूवन् इति विष्णुपुराणे)3/3/7-8(, देवीभागवते)1/3/24-35 (व स्पष्टं उल्लिखितमस्ति । व्यासः कस्यापि व्यक्तेः अभिधानं नास्ति परन्तु एका पदवी भवति । अयम् उपाधिधारी प्रतिद्रापर्युगम् आविर्भवति । यथोक्तं तेन -

द्रापरे द्रापरे विष्णुव्यासरूपी महामुने ।

वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः ॥

(विष्णुपुराणम् -3/3/5

अपि च - द्रापरे द्रापरे विष्णुव्यासरूपेण सर्वदा ।

वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया ॥

(देवीभागवतम् -3/19

ज्ञानावतारः व्यासः-

यदा यदा संसारे धर्मस्य ग्लानिर्जायमाना दृश्यते तदा तदा धर्मसंस्थापनाय भगवान् स्वयमेव धरातलमवतरति । महर्षिः व्यासोऽपि भगवत्स्वरूपः । द्रापपर्युगस्य अन्तिमवर्णे पापानां प्रावत्यात् पुण्यानां पुण्यशालिनाञ्च क्षीणत्वात् मानवानाम् आयुः, मानसिकक्षमता आध्यात्मिकशक्तयश्च सम्पूर्णं नष्टं गताः । वैदिकज्ञानसम्पन्नाः संस्कृतिप्रेमिणश्च दुर्लभाः सञ्जाताः । वैदिककाव्यज्ञानुष्ठानानि विलुप्तानि । अतः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी भगवान् स्वयमेव जगतः कल्याणाय ब्रह्मर्षेः वशिष्ठस्य पौत्ररूपेण पराशरसत्यवतीसुतत्वेन जनिमलभत ।

अयं महर्षिः व्यासः साक्षात् ज्ञानस्यप्रतिमूर्तिः आसीत् । सर्वविधलौकिकपारलौकिकज्ञानैः सः दीप्तिमान् आसीत् । तस्य सम्भ्रवनाजातं परिशील्य संस्कृतसाहित्यसमीक्षकाः समाजशास्त्रविदश्च महात्मानमेतन्मन् अनन्यमसाधारणं तथा च भगवतः ज्ञानस्य अवतारः इतिप्रमाणयन्ति । वाचस्पतिमिश्रेण भामत्यां मङ्गलश्लोके एतदेव प्रमाणितं वर्तते । तथा -

ब्रह्मसूत्रकृते तरुमै वेदव्यासाय धीमते ।

ज्ञानशक्त्यवताराय नमो भगवते हेः ॥ इति ।

पुनश्चायं भगवान् व्यासः स्वगुणगौरवेण सर्वान् कवीन् अतिश्रेते । ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरणां त्रयाणां देवानां महनीयं स्वरूपं तस्य व्यक्तित्वे उद्भासितं भवति । तस्मात् अयं त्रिदेववद् वन्द्यते । तदुक्तम्-

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।

अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ॥

व्यासस्य कृतयः -

त्रिभिः वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।

महाभारतमाख्यानं कृतवान् इदमुत्तमम् ॥ महाभारतम्-1/56/32(

संस्कृतसाहित्यजगतः सुप्रसिद्धं महाकाव्यं महापुराणं वा महाभारतं कृष्णद्वैपायनेन महामुनिना व्यासेन महता श्रमेण त्रिभिः वर्षैः विरचितमिति तत्रैव तस्य ब्रह्मे स्वयमुद्घोषितम् । सम्भवतः अष्टादशपुराणानां रचनाचारनन्तरमेव सः महाभारतं व्यरचयत् इति ज्ञायते । तथाहि महाभारतस्य आदिपर्वणि लिखितं यत् -

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।

पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥

अस्य महाभारतस्य वैशिष्ट्यं सर्वजनविदितम् । सरलया मधुरया गिरा वैदिकसंहितायाः दुरुहार्थकतत्त्वानि, सामाजिकजीवनसम्बद्धानि तथ्यानि, भारतवर्षस्य संस्कृति-सभ्यता-परम्परा-आचार-विचार-मूल्य-लोकव्यवहार-सिद्धान्तान् मञ्जुलप्राञ्जलतया वर्णयति । महाभारतस्य सांस्कृतिकं, ऐतिहासिकं, सामाजिकं, राजनैतिकं, साहित्यिकम्, आलङ्कारिकं, धार्मिकम्, आध्यात्मिकञ्च महत्त्वं सर्वोपरि महतां विधते । सामाजिकजीवनस्य सर्वेषां प्रज्ञानाम् उत्तराणि तत्रैव प्राप्यन्ते । समाजे पथभ्रन्तः मानवः महाभारतोक्तानि जीवनमूल्यानि स्वीकृत्य सदा सन्मार्गम् अधिगच्छति । तस्मात् उच्यते-

धर्मो वार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ॥

यदिहारित तदन्यत्र यन्नेहारित न तत् वचवित् ॥

(महाभारतम्-1.62.53

किञ्च महाभारतस्य सुविशालं महनीयं च स्वरूपं तन्महत्त्वं प्रख्यापयति । तदर्थं महत्त्वात् भारतवाच्यं महाभारतमुच्यते इति प्रसिद्धिः । विष्वजनवन्दितं महाभारतस्य भीष्मपर्वान्तर्गतं पद्मनाभमुखनिःसृता श्रीमद्भगवद्गीता तदीयम् आध्यात्मिकमहत्त्वं वरीवर्तते ।

व्यासेन न केवलं महाभारतम् अपितु सुविशालं पुराणसाहित्यमपि प्रणीतमस्ति । असौ वेदार्थतत्त्वं व्याख्यातुम् अष्टादशपुराणानाम् उपपुराणानां च रचनां चकार । महाभारतवचनाद् वेदार्थतत्त्वं पुराणादिभिः उपबृंहते । पुराणानां महत्त्वविषये उल्लिखितं वर्तते यत्-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

विभक्त्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥ इति ।

किञ्च नारदीयपुराणेऽपि पुराणानां महत्त्वं वर्णितं दृश्यते यथा-

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नाम्न संशयः । (नारदीयपुराणम् -2/24/17)

भगवता व्यासेन रचितानाम् अष्टादशसंख्याकानां पुराणानां नामानि एकेन पद्येन एवं निर्दिष्टम् अस्ति । यथा-

मद्भयं भद्रयं चैव ब्रह्मयं वचतुष्टयम् ।

अनापलिङ्गकूरकानि पुराणानि प्रचक्षयते ॥

तत्र मकारादिना मत्स्यपुराणं मार्कण्डेयपुराणं च, भकारादिना भगवतपुराणं भविष्यपुराणं च, ब्रह्मयेण ब्रह्मपुराणं, ब्रह्मवैवर्तपुराणं ब्रह्माण्डपुराणं च, वचतुष्टयेन वामनपुराणं, विष्णुपुराणं, वासुपुराणं, वराहपुराणम्, अनापलिङ्गकूरकानि इत्यनेन अग्निपुराणं, नारदपुराणं, पद्मपुराणं, लिङ्गपुराणं, गरुडपुराणं, कूर्मपुराणं, स्कन्दपुराणं वेत्यादीनि प्रथन्ते । पुनश्च परवर्तिकाले कुमार-नरसिंह-वासु-शिवधर्म-दुर्वासस्-आश्वर्य-नारद-नन्दिकेश्वर-अश्वत्थ-कपिल-वारुण-शाम्ब-कालिका-माहेश्वर-कल्कि-देवी-पाराशर-मरीचि-भारतखरुख्यानि अनेकानि पुराणानि तस्य नाम्ना रचितानि दृश्यन्ते । एतेषु सर्वेषु पुराणेषु श्रीमद्भगवतमहापुराणं ज्ञानस्य निष्कामकर्मणः भक्तेश्च सङ्गमस्थलं मन्यते । पुनश्च वेदव्यासप्रणीतस्य ब्रह्मसूत्रस्य भाष्यमेव भगवतमिति समीक्षकाः वदन्ति । एतेषु पुराणेषु भारतीयसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च यथार्थतो वर्णनं दृश्यते

। तस्मात् पञ्चमवेदत्वेन पुराणानां महत्त्वम् अस्तीति कथितं श्रीमद्भागवते इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते इति । किञ्च वायुपुराणे उद्घोषितं यद् चतुर्वेद-वेदाङ्ग-उपनिषदां ज्ञाताऽपि पुराणज्ञानविहीनः जनः न कदापि विवक्षणः भवति । यथोक्तं तेन –

यो विद्यात् चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।

न चेत् पुराणं स विद्यात् नैव सः स्यादविचक्षणः ॥

इदानीमपि महाभारतीययुगस्य पुराणयुगस्य च प्रभावः समाजे परिलक्ष्यते । पुराणेषु व्याकरणं, छन्दः, ज्योतिषं, धर्मशास्त्रम्, आयुर्वेदः प्रभृतीनां शास्त्रीयं वैज्ञानिकं च महत्त्वं प्रतिपादितमस्ति ।

महाभारतं पुराणञ्च अतिरिच्य भगवता व्यासेन सूत्रात्मकशैल्या वेदान्ततत्त्वप्रतिपादकं ब्रह्मसूत्रम् इति ब्रह्मसूत्रेण प्रणीतः । उच्यते यत् -वेदान्त नाम उपनिषत्प्रमाणम् । उपनिषदां मन्थनं कृत्वा सः ज्ञानस्य यत् नवनीतं प्रस्तुतवान् तदेव भवति ब्रह्मसूत्रम् । वेदान्तदर्शनस्य आधारभूमिरिति ब्रह्मसूत्रं परिगण्यते । ब्रह्मसूत्रम्, गीता उपनिषद् च प्रस्थानत्रिरूपेण प्रथन्ते । अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (1/1/1) इति सूत्रेण ब्रह्मसूत्रस्य आरम्भः जातः तथा च समाप्तिः अनावृतिः शब्दादनावृतिः शब्दात् (4/4/22) इत्यनेन सूत्रेण सञ्जाता । चतुर्भिः अध्यायैः विभक्तं ब्रह्मसूत्रमेतत् । प्रत्यध्यायं चत्वारः पादाः राजन्ते । 555 सूत्रैः ब्रह्मसूत्रग्रन्थः ब्रह्मतत्त्वजिज्ञासूनां वेदान्ततत्त्वस्य विद्वान् कृते आलोकरूपेण मार्गं दर्शयति । वदरिकाग्रमे उपि एव व्यासः एतस्य ग्रन्थस्य रचनां कृतवान् इत्यतः एतत् वादरायणसूत्रम् इति प्रसिद्धिं लभते ।

व्यासोक्तदिशा शिक्षा -

प्राचीनभारतीयशिक्षाशास्त्रीषु तपोनिधिः व्यासः शिखरं स्थानं परित्यज्यति । आध्यात्मिकतादात्म्यकरणप्रक्रिया एव शिक्षा इति अस्य अभिमतम् । पुनश्च येन साधनेन ब्रह्मज्ञानस्य प्राप्तिर्जायते मानवः मुक्तिं च लभते सा शिक्षा इति । एवमेव असौ स्वकृतिषु शिक्षायाः समग्रत्ययेन सह सर्वान् शिक्षणसिद्धान्तान्, समाजशास्त्रीयसिद्धान्तान् च विस्तृतरूपेण विवेचयति । शिक्षायाः तात्पर्यं, महत्त्वं, लौकिकानि पारलौकिकानि च उद्देश्यानि, शिक्षार्थिनां पाठ्यचर्यायाम् शिक्षणीयाः विषयाः, शिक्षणविषयाणां तत्त्वान्च अवबोधनाय अधिगमाय च शिक्षणविधयः, आचार्याणां गुणाः, व्यक्तित्वं कर्तव्यम् उतरदायित्वञ्च, शिक्षार्थिनां गुणाः व्यक्तित्वं कर्तव्यम् उतरदायित्वञ्च, गुरुशिष्यसम्बन्धः, विश्वस्य, राष्ट्रस्य, समाजस्य च कल्याणाय उभयोः शिक्षकशिक्षार्थिनोः किं योगदानम्, शिक्षासंस्थानां वातावरणं कीदृशं भवेत् इत्येते सर्वे विषयाः प्रतिपादिताः वर्तन्ते । किञ्च समाजे सामाजिकैः सह सम्बन्धं संस्थाप्य उत्तमं जीवनयापनं कथं कर्तव्यम्, समाजे सामाजिकं परिवर्तनं कथम् आनेतव्यम् इत्येतान् अपि सिद्धान्तान् योतयति । तत्प्रदत्तं राजनैतिकं ज्ञानम् उत्कृष्टसमाजस्य प्रगतिशीलराष्ट्रस्य च निर्माणाय सदैव सहायकं भवति । सः प्रतिभावान् मनोवैज्ञानिकोऽपि भवति । अध्यापकः मनोवैज्ञानिकरीत्या छात्राणां सर्वाः परिस्थितीः परिशील्य तान् पाठ्येषु, उचितपरायणैः निर्देशनेन च तेषां समस्यासमाधाने सन्तुष्टः भवेत्युक्तिं शिक्षाशास्त्री व्यासः दिग्दर्शनं ददाति । एवमेव तस्य सर्वासु कृतिषु लोकोपकारकाणि शैक्षिकतत्त्वानि बहुतया प्राप्यन्ते ।

उपसंहारः -

मानवसमाजं सत्पथे प्रवर्तयितुं परमशिक्षाशास्त्रिणः भगवतः व्यासदेवस्य अमूल्यशैक्षिकोपदेशः भारतीयज्ञानपरम्परायां विशिष्य संस्कृतवाङ्मये निहितः । तस्मात् संस्कृतवाङ्मयस्य निर्मातृषु अस्य नाम अमरस्थानं विभर्ति । व्यासस्य रचनामाधारीकृत्य परवर्तिनि काले अद्यावधि च संस्कृतकाव्यकाशः बहुविधानि

काव्यनाटकानि विरच्य संस्कृतसाहित्यस्य समृद्धिं संसाधयन्ति । आधुनिकसमाजस्य समाजशास्त्रिणः व्यासकालीनं समाजं परिशील्य सांप्रतिकसमाजे तदुपादेयानां प्रकटयन्ति । तत्कृतिषु उपस्थापिताः सर्वे समाजशास्त्रीयसिद्धान्ताः, लोकव्यवहाराः, शैक्षिकोपदेशाश्च इदानीमपि मानवसमाजं दिग्दर्शनं प्रयच्छन्ति । अद्यत्वे वैज्ञानिकयुगेऽपि छात्रेषु नैतिक-चारित्रिक-आध्यात्मिक-धार्मिक-सामाजिकविकाससम्पादनाय अस्य रचनाः सहायकाः भवन्ति । इदानीं राष्ट्रियशिक्षानीतिः 2020 भारतीयज्ञानपरम्परायां प्राचीनभारतीयशिक्षाप्रणाल्याञ्च अधिकं महत्त्वं ददाति । अतः भारतीयशिक्षाक्षेत्रे विविधस्तरीयपाठ्यचर्यासु महर्षेः व्यासस्य विषयाः अवश्यमेव संयोजनीयाः संरमणीयाश्चेति दिक् ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

Sl	First Name of Author	Last Name	Title	Editor	City	Publication	Year
1			महाभारतम्		गोरखपुर	गीताप्रेस्	2009
2			श्रीमन्महाभारतम्		दिल्ली	नागपब्लिशर्स	2005
3	चारुदेव	शास्त्री	महाभारतवचनमृतम्		दिल्ली	परिमलपब्लिकेशन्स्	1983
4	सुभाष	विद्यालङ्कार	महाभारतसूक्तिसुधा		दिल्ली	प्रतिभाप्रकाशन	2009
5	पि. एस्. शेषगिरि	आचार्यः	विद्वान् श्रीमद्भागवतम्		बेङ्गलुरु	पूर्णप्रज्ञाशोधमन्दिरम्	2001
6			श्रीमद्भागवतम्		गोरखपुर	गीताप्रेस्	2008

पुराणेषु सर्गः

गौरी पि¹¹⁴

प्रमुखशब्दाः -सर्गः, सृष्टिः, प्राकृतः, वैकृतः, तिर्यक्, अनुब्रह्म, वैकारिकः, भूतः, ब्राह्मः इत्यादयः

शोधसारः- आधुनिकभारतीयसमाजोद्धाराय पुराणानि आधारपीठानि। प्रथमतः पुराणेषु विद्यमानविषयाध्ययनाय पुराणस्य फचलक्षणानां ज्ञानमावश्यकम्। तानि सर्गः, प्रतिसर्गः वंशः, मन्वन्तरः, वंशानुचरितम् इति तक्षणाणि उक्तानि।

तेषु सर्गः प्रथमः। सृष्टिं विना जगतः स्थितिः दुस्साध्यहेतुरेवा एतादृशसर्गः केषु केषु च पुराणेषु, कथं वा व्याख्यात इति अस्मिन् प्रबन्धे व्याख्यास्यते। त्रिगुणात्मिकायाम् अस्यां प्राकृतौ जायमानासमासक्षोभात् महत्त्वस्याविर्भावः, ततः अहङ्कारः, तत एकादशेन्द्रियाणि फचतन्मात्राश्च, ततः फचमहाभूतानाम् उत्पादनमेव सर्ग इति पुराणानि बोधयन्ति।

श्रीमद्भागवते प्रमुखतया सर्गस्य त्रैविध्यम् कथितं दृश्यते। स च सर्गः प्राकृतसर्गः, वैकृतसर्गः, उभयात्मकसर्गश्चेति। एतेषां सर्गाणां भेदोपभेदाश्च अत्र वर्तितः।

भूमिका -

आधुनिकभारतीयसमाजोद्धाराय पुराणानि आधारपीठानि। प्रथमतः पुराणेषु विद्यमानविषयाध्ययनाय पुराणस्य फचलक्षणानां ज्ञानमावश्यकम्। तानि च तक्षणाणि एवमुक्तानि -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैव पुराणं फचलक्षणम्।¹¹⁵

अत्र सर्गो नाम जगत्सृष्टिः। प्रतिसर्गो नाम दृश्यमानस्य समस्तविश्वस्य प्रलयः। वंशो नाम ब्रह्मोत्पन्नाः देवर्षिमनुष्याणामुत्पत्तिपरम्परा। मन्वन्तरं नाम सृष्ट्यादीनां कालव्यवस्थापनम्। वंशानुचरितं नाम तत्तदंशभवानां राज्ञां राजर्षीणां महर्षीणां च विषये यद्गतकव्यं तद्विवरणोपस्थापनञ्चेति एतेषामर्थः फलत्वेव।

तेषु सर्गः प्रथमः। सृष्टिं विना जगतः स्थितिः दुस्साध्यहेतुरेवा एतादृशसर्गः केषु केषु च पुराणेषु, कथं वा व्याख्यात इति अत्रे वर्तयामः।

सर्गः -

त्रिगुणात्मिकायाम् अस्यां प्राकृतौ जायमानासमासक्षोभात् महत्त्वस्याविर्भावः, ततः अहङ्कारः, तत एकादशेन्द्रियाणि फचतन्मात्राश्च, ततः फचमहाभूतानाम् उत्पादनमेव सर्ग इति पुराणानि बोधयन्ति।

अव्याकृतगुणक्षोभान् महत्स्त्रिवृतोऽहम्।

¹¹⁴ एम्. ए., डिप्लोमा इन् हस्तप्रतिशास्त्रम्, संशोधनसहायिका, प्राच्यविद्यासंशोधनालयः, मैसूरु विश्वविद्यालयः, मैसूरु

¹¹⁵ ब्रह्मवैवर्तपुराणम् १.३.१.५

भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।¹¹⁶

श्रीमद्भागवतस्य तृतीयस्कन्धस्य दशमेऽध्याये प्रमुखतया सर्गस्य त्रैविध्यं कथितं दृश्यते। स च सर्गः प्राकृतसर्गः, वैकृतसर्गः, उभयात्मकसर्गश्चेति।

प्राकृतोः स्वभावात् य उत्पद्यते सः प्राकृतसर्गः। विकृतोः स्वभावात् ब्रह्मणा य उत्पद्यते स वैकृतसर्गः। यः सर्गः प्राकृतवैकृतोभयात्मको भवति स उभयसर्ग इति वक्तुं शक्यते।

प्राकृतसर्गः पुनः षडुपविभागेषु विभक्तः। एवमेव वैकृतसर्गोऽपि विभागत्रये तथा उभयात्मकसर्ग एव एवेति दृश्यते। सर्वे आहत्य सर्गाः दशप्रकारा इति पुराणेषु दृश्यते।

आद्यस्तु महत्सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः।¹¹⁷

आद्यसर्गः महत् इति तत्त्वं भवति। अयं तु सृष्टेयदो भगवतः प्रेरणया प्रकृतिस्थेषु सत्त्वादिगुणेषु स्थितस्य क्षोभस्य व्यत्यासेन उत्पादितः सर्गः।

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः।¹¹⁸

द्वितीयः सर्गः अहङ्कारतत्त्वभूतः। अस्मिन् सर्गे पृथिव्यादिफचभूतानाम् इन्द्रियाणाञ्च सृष्टिर्जायते।

भूसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान्।¹¹⁹

तृतीयः सर्गः भूतसूक्ष्मात्मकः। अस्मिन् सर्गे फचमहाभूतोत्पादकः यः सूक्ष्मरूपी वर्तते। तस्य तन्मात्रस्य सृष्टिस्त्रय जायते।

चतुर्थ ऐन्द्रियसर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः।¹²⁰

ज्ञानकर्मसाधकानाम् इन्द्रियाणां सर्जनम् अत्र द्रष्टव्यम्।

वैकारिको देवसर्गः फचमो यन्मयं मनः।¹²¹

अस्मिन् फचमे सर्गे सात्त्विकाहङ्कारात् इन्द्रियाणाम् अधिदेवतानामुत्सर्जनं भवति। मनो नाम अन्तरिन्द्रियोऽपि अस्मिन्नेव अन्तर्भवति।

षष्ठस्तु तमससर्गो वस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो।

षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे श्रुणु।¹²²

फचपर्वाविवयोश्च उल्लेखः अस्मिन् सर्गे द्रष्टुं शक्यते। अत्र तामिस्रः, अन्धतामिस्रः, तमः, ब्रह्म, महामोहश्चेति फचब्रन्थयः उत्पद्यन्ते। एताः ब्रन्थयः प्राणिनामज्ञानकारकाः। एते पट्सर्गाः प्राकृतसर्गेऽन्तर्भवन्ति।

सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तुस्थुषां च यः।¹²³

¹¹⁶ भागवतम् १.२.७.११

¹¹⁷ भागवतम् ३.१०.१४

¹¹⁸ भागवतम् ३.१०.१५

¹¹⁹ भागवतम् ३.१०.१५

¹²⁰ भागवतम् ३.१०.१६

¹²¹ भागवतम् ३.१०.१६

¹²² भागवतम् ३.१०.१७

¹²³ भागवतम् ३.१०.१८

उद्दिष्टादि षड्विधरथावस्वृष्टिमधिकृत्य अयं सप्तमः सर्गः प्रवर्तते। स च वनस्पतिः (ये पुष्पं विना फलन्ति ते), औषधयः (फलपाकान्ताः), लताः (आरोहणापेक्षाः), त्वक्सारम् (तेण्वादयः), वीरुधः (रोहणानपेक्षाः), द्रुमाः (ये पुष्पैः फलन्ति ते द्रुमाः) वेति। अत्र चैतन्यः अव्यक्तरूपेण भवति। इमं केवलस्पर्शज्ञानेनैव ज्ञातुं शक्यते। अयमेव अत्र विशेषगुणः।

तिरश्चाष्टमसर्गः सोऽष्टाविंशविधो मतः।

अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञाह्यवेदिनः।

गौरजो महिषः कृष्णसूक्तरो गवयो रुरुः।

द्विशफाः पशवश्चित अविष्टुक्ष सत्तमा।

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरशशभक्षमरी तथा।

एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पचनखान् पशून्।

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारशशशल्ककाः।

सिंहः कर्पिर्जः कूर्मो गोधा च मकरादयः।

कङ्कगृध्रबकश्चेनभासबल्लुकबर्हिणः।

हंससारसचक्राहकाकोलूकादयः खगाः।¹²⁴

अस्मिन् अष्टमे सर्गे पशु-पक्षि-किटादितिर्यग्योनिप्राणिनां सर्जनज्ञानं लभते। अयं तु सर्गः उपर्युक्तरूपेण अष्टाविंशतिविधैर्भक्तः।

तिरश्चां लक्षणम् - अविदः श्वस्तनादिज्ञानशून्याः। भूरितमसः आहारादिमात्रनिष्ठाः। घ्राणज्ञाः घ्राणेनैव इष्टमर्थं जानन्ति। ह्यवेदिनः दीर्घानुसन्धानशून्याः। अष्टमस्यास्य सर्गस्य अष्टाविंशतिभेदानां वर्णनं पुराणव्याख्यासु एवं दृश्यते - गवादय उद्वान्ताः द्विशफाः द्विशुराः नवा गवादयः चर्मयन्ता एकशफाः षट् श्वादयो गोधान्ताः पचनखा द्वादश। एवमेते भूचराः सप्तविंशतिः। मकरादयो जलचराः कङ्कादयश्च खगाः। अभूवस्त्वेनकीकृत्य गृहीताः। एवं प्रकारेण अस्य सर्गस्य उपभेदाः गृहीता भवन्ति। अन्ये तिर्यक्प्राणिनः ये लोकेऽस्माकमज्ञानात् चरन्ति तेषामपि उक्तेष्वेतेषु यथायथमन्तर्भावो जायते।

अर्वावस्रोतस्तु नवमः क्षत्रेकविधो नृणाम्।

रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः।¹²⁵

मनुष्यसृष्टेरुत्पत्तेः अस्मिन् नवमे सर्गे दृश्यते। मानवस्य आहारपद्धति उपरिष्ठात् अधः जायते। अर्थात् मुखात् उदरं प्रति गच्छति इति। मनुष्याः कर्मपरायाः रजोगुणप्रधानाः सुखमानिनश्च भवन्ति इति च अयं सर्गः बोधयति।

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तमा।¹²⁶

एवं द्विसप्तमः स्थावरसर्गः, अष्टमः पशुपक्ष्यादिसर्गः, नवमः मनुष्यसर्गः चैते उक्ताः सर्गाः वैकृतसर्गे अन्तर्भवन्ति।

वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभ्यात्मकः।¹²⁷

¹²⁴ भागवतम् ३.१०.२०-२४

¹²⁵ भागवतम् ३.१०.२५

¹²⁶ भागवतम् ३.१०.२६

¹²⁷ भागवतम् ३.१०.२६

दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसूक्तानः।¹²⁸

अयं तु दशमः सर्गः अतिरिक्तः सर्गः। अस्य कौमारसर्ग इति नामान्तरमपि वर्तते। अत्र सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमाराणां सृष्टिर्भवति। परन्तु सनक-सनन्दन-सनत्कुमार-सनत्सुजाताः इति केचन तेषाम् अभिप्रायं मण्डयन्ति। प्राकृत-वैकृतसर्गोपेतोऽयं सर्गः विशेषेण उभयात्मकसर्ग इति पुराणानि पाठयन्ति। यथा -

पच्यते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।¹²⁹

प्राकृतास्तु त्रयस्सर्गाः कृतास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः।

बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तु वै।¹³⁰

उक्तथितान् दशभेदान् अतिरिच्य विहाय वा पुराणे नवभेदाः सन्ति इति केषुचन पुराणेषु उल्लिखितानि दृश्यन्ते। ते तु प्राकृतसर्गत्रयम्, पच्यवैकृतसर्गः, उभयात्मकसर्ग एक इत्यादयः नवभेदाः। एतेषु प्राकृतसर्गः स्वभावतः अबुद्धिपूर्वकः। अर्थात् ब्रह्मणः बुद्धिव्यापारस्यावश्यकता प्राकृतसर्गे न विद्यत एवेति।

परन्तु वैकृतसर्गः उभयात्मकसर्गश्च प्राकृतसर्गात् विरुद्ध इति दृश्यते। किन्तु एतौ बुद्धिपूर्वकसर्गौ। अतोऽत्र ब्रह्मणा विचारपूर्वकं सृष्ट्यादिकार्यं कृतम् इति पुराणादिभिः स्पष्टमवगम्यते।

प्राकृतसर्गस्य त्रयो भेदाः -

१. **ब्राह्मसर्गः** - साङ्ख्यदर्शनानुसारेण महत्तत्त्वमेव प्रकृतिपुरुषसंयोगस्य प्रथमः परिणामः। भगवद्गीतानुसारेणापि ब्रह्मशब्दः बुद्धितत्त्वबोधक एव। अतः बुद्धिसर्ग एव ब्राह्मसर्ग इति स्पष्टं सर्वत्र।

२. **भूतसर्गः** - पच्यतन्मात्राणां सृष्टिरेव भूतसर्गः। पच्यतन्मात्राणि एव पृथिवीजलाग्निवाय्वाकाशानि इत्येषां पच्यमहाभूतानां सूक्ष्मशरीराणि भवन्ति।

३. **वैकारिकसर्गः** - पच्यज्ञानेन्द्रियाणि, पच्यकर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकमनश्च आहत्य एकादशेन्द्रियसर्गोऽयं वैकारिकः। अस्य सर्गस्य ऐन्द्रियसृष्टिरिति नामान्तरमपि विद्यते।

वैकृतसर्गस्य पच्यभेदाः -

१. **मुख्यसर्गः** - सृष्टिचक्राकाते ब्रह्मणा अविद्यारूपा तमोमया च सृष्टिरभूत्। तदनन्तरं बाह्याभ्यन्तरज्ञानशून्यानां जडात्मकानां स्थावराणां च सर्जनमभवत्। पृथिव्यां नित्यभूताः स्थावरा एव प्रमुखाः। अतोऽयं मुख्यसर्ग इति कथितुं शक्यते।

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।¹³¹

२. **तिर्यकसर्गः** - मुख्यसर्गात् पुरुषार्थासाधकत्वम् आलोच्य ब्रह्मा पुनरातोव्य तिर्यग्योनेः सृष्टिं कृतवान्। अत्र पशुपक्ष्यादीनां सर्जनं जायते।

¹²⁸ भागवतम् ३.१०.२८

¹²⁹ विष्णुपुराणम् १.५.२५

¹³⁰ वायुपुराणम् ६.६६

¹³¹ विष्णुपुराणम् १.५.२९

३. **देवसर्गः** - ब्रह्मा तिर्यग्योनिःसर्जनादपि अतृप्तो भूत्वा स्वानन्दाय मोक्षहेतवे देवसर्गमकारि एते ऊर्ध्वलोकवासिनः ब्रह्माभ्यन्तरज्ञानसम्पन्नाः सत्त्वगुणसहिताः भवन्ति।

४. **मानवसर्गः** - विषयसुखापेक्षिणः देवसर्गेणापि अतृप्तः ब्रह्मा पुरुषार्थसाधनाय विभिन्नप्राणिवर्गम् असृजत् अयं प्राणिवर्गः पृथिव्यां वसति। अतोऽयं सर्गः अर्वाचस्रोत इति नाम्ना पुराणेषु कथितः। अयं प्राणिवर्गः सत्त्वस्वस्तमोभूषिष्टः। अयं प्राणी प्रथमतः तमोगुणस्य आधिव्यात् दुःखमनुभवति। रजोगुणाधिव्यहेतुना केवलविषयासक्तो भवति। अनन्तरं सत्त्वगुणस्याभिनिवेन बाह्याभ्यन्तरब्रह्मज्ञानमर्ज्यं मोक्षं साधयति। इयमेव सृष्टिः मनुष्यसृष्टिरिति नाम्ना कथिता।

५. **अनुग्रहसर्गः** - प्रकृतेरनुग्रहात् सृष्टिरभवदित्ययम् अनुग्रहसर्गः। विष्णुपुराणानुसारमिवं सृष्टिः उपरिक्थितसर्गवत्पुष्ट्यमाहृत्य ब्रह्मणा साङ्केतिकरूपेण सात्त्विकतामसगुणयुक्ता इति च प्रतिपादिता। वायुमार्कण्डेयपुराणयोः अनुग्रहसर्गः चतुर्धा विभक्तः। स च विपर्ययः, शक्तिः, सिद्धिः, तुष्टिः चेति विपर्ययः स्थावरेऽन्तर्भवति। शक्तिः तिर्यग्योनिषु अन्तर्भवति। सिद्धिः मानवेषु अन्तर्भवति। तुष्टिस्तु सुरेषु (देवतासु देवेषु वा) अन्तर्भवति।

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः।

विपर्ययेन शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च।¹³²

स्थावरेषु विपर्यासरित्यग्योनिषु शक्त्या।

सिद्ध्यात्मनो मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः।¹³³

उभयात्मकसर्गः -

उभयात्मकसर्गस्य कौमारसर्ग इति च नामान्तरम् अयं प्राकृतवैकृतात्मकोभयात्मकसर्गः। अत्र सनक-सनन्दन-सनातन-सन्तकुमाराणां सृष्टिः जायत इति केचन अभिप्रयन्ति। तथैव सनक-सनन्दन-सन्तकुमार-सन्तसुजातानां सृष्टिरियम् इति अन्ये केचन विबुधाः अभिप्रयन्ति। आदौ सृष्टः सनकादयः यथाभूताः तथैव अद्यापि परिवर्तनारहिता एव भवन्ति इति कारणेन तेभ्यः चतुर्भ्यः वायुपुराणे कुमार इति नामकरणं कृत्वा कौमारसर्गस्य औचित्यं सूचितं दृश्यते।

यथोत्पन्नारतथैवैव कुमार इति चोच्यते।¹³⁴

कौमारसर्गस्य उभयात्मकत्वविषये भागवतटीकाकाराः अनेकान् अभिप्रायभेदान् सूचयित्वा तेषामेव विभिन्नमतानि च मण्डयन्ति। कुमाराणां सृष्टिः ध्यानाविष्टब्रह्मणः मनसा जात इति विश्वनाथचक्रवर्तिमतम्।

तथैव वल्लभाचार्यैः विरचितसुबोधिनीव्याख्यायां एते कुमाराः देवताः मनुष्याश्चेति परिगण्य व्यासाचार्यैः कौमारसर्गः उभयात्मकसर्ग इति नामकृतमिति स्पष्टीकृतम्।

एवमेव कुमाराः मनुष्यकोटौ नान्तर्भवन्ति। एते ज्ञानभक्तिसम्प्रदायप्रवर्तकाः। ते पुराणोक्तरीत्या ब्रह्ममानसपुत्राः। तेषां जन्म एक एव, अतः चिरुजीवाः इति निम्बार्कानुयायिनः शुक्रदेवाचार्यस्य मतम्।

सृष्टिरचनायां भगवान् केवलः निमित्तमात्र एव किन्तु पदार्थस्योत्पन्नस्य शक्तिरेव प्रधाना। ईश्वरः केवलं तत्सृष्टेः रूपनिर्माता प्रतिनिधिः च। उदाहरणाय मेघसान्निध्यात् बीजाङ्कुरं भवति, परन्तु बीजः स्वशक्त्या स्वरूपं धरति।

¹³² मार्कण्डेयपुराणम् ४८.२८

¹³³ वायुपुराणम् ६.६३

¹³⁴ वायुपुराणम् ९-१०९

तथैव ब्रह्मकृतायां सृष्टिक्रियायां ब्रह्मा मेघवत् सान्निध्यं वहति, उत्पन्नस्तु पदार्थः स्वशक्त्या स्वरूपं धरति इति श्रीधरस्वामिना स्वस्य भागवतटीकायां स्वमतं मण्डितम् एवं मतभेदेन सत्यां सत्यासत्यवाद् रूपेण कानिचनपि मतानि मण्डितानि भवन्ति तेषां मध्ये ब्रह्मणः सृष्टिकार्यमेव सत्यम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. श्रीवेदव्यासः, वेदपुर कृष्णप, **ब्रह्मवैवर्तपुराणम्**, श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयर, मैसूरु, १९७०.
२. श्रीवेदव्यासः, **भागवतपुराणम्**, गीता प्रेस्, गोरखपुर, १९९९.
३. श्रीवेदव्यासः, प. थानेशचन्द्र उग्रैति, **विष्णुपुराणम्**, परिमल पब्लिकेशन्, देहली, २०११.
४. श्रीवेदव्यासः, आर्. सेतुमाधवाचार्यः, **वायुपुराणम्**, श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयर, मैसूरु, १९४७.
५. श्रीवेदव्यासः, आस्थानविद्वान् पाटणकर चन्द्रशेखरभट्टः, **मार्कण्डेयपुराणम्**, श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयर, मैसूरु, १९५३.
६. दिदिग्गि वंशीकृष्णः, **पुराणतत्त्वमीमांसा**, कण्ठि प्रकाशन, मैसूरु, २०१८.

साहित्यशास्त्रादिशा काशिकापठितोदाहरणानां पर्यालोचनम्

डॉ. धर्मनन्ददास:¹⁵⁵

प्रमुखशब्दाः- काशिका, सूत्रम्, उदाहरणम्, अलङ्कारः, रस

शोधसारः- पाणिनीयसूत्राणां व्याख्यानावसरे कानिचन उदाहरणानि उपदेशपरकाणि सूक्तिरूपाणि च प्राप्यन्ते । तादृशाणां पद्यमयोदाहरणश्लोकानां विवेचनेन साहित्यिकतात्वं स्फुटीभवति । साहित्यशास्त्रीयाणां तत्त्वनिष्ठानाम् उदाहरणानां पर्यालोचनं विशेषतया क्रियते । काशिकावृत्तौ संगृहीतानां पद्यमयोदाहरणश्लोकानां विचारः प्रस्तूयते । साहित्यशास्त्राधारेण काशिकावृत्तितोदाहरणानां तात्पर्याकतनम् शोधपत्रेऽस्मिन् मुख्यविषयत्वेन प्रतिपाद्यते । काशिकावृत्तितोदाहरणेषु प्रतिफलितानां रीति-रस-गुण-अलङ्कारादीनां काल्पनिकतात्त्वानां विचारः यथासम्भवं क्रियते । 'प्रथमो हि विद्वांसो वैयाकरणः' -इति आलङ्कारिकस्य आनन्दवर्धनस्य सिद्धान्तः शोधपत्रेण समर्थितः ।

उपक्रमः (Introduction)

भगवता पाणिनिना विरचितं सूत्रात्मकम् अष्टाध्यायीग्रन्थरत्नम् । पाणिनीयसूत्राणां व्याख्यानग्रन्थत्वेन प्रसिद्धा काशिकावृत्तिः । साहित्यस्य भावः साहित्यम् । साहित्यस्याध्ययनं विना मनुष्यः पुच्छबिषाणहीनः पशुतुल्यः । महाभाष्यकारेण पठितः श्लोकः काशिकाकारेण उद्धृतः, यत्र श्लोके सूत्रकारः पाणिनिः कविरूपेण परिभाषितः । तथाथा-

दुहित्याचिरुधिप्रच्छिभिभिः विनामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ ।

ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना ॥ (म.भा. १. ४. ७१)

काशिकाव्याख्याकारेण पदमञ्जरीकारेण कविशब्दः मेधाविमात्रवचनः इति व्याख्यातः । इत्थं सूत्रकारः पाणिनिः कविरूपेण विवेचितः । काशिकावृत्तौ संगृहीतानि उदाहरणानि च रमणीयानि साहित्यशास्त्राधारेण काशिकावृत्तितोदाहरणानां तात्पर्याकतनम् शोधपत्रेऽस्मिन् मुख्यविषयत्वेन प्रतिपाद्यते ।

१.० काशिकावृत्तेः मङ्गलाचरणश्लोकविवारः

मङ्गलं नाम प्रारिप्सितपरिसमाप्तिप्रतिबन्धकध्वंसासाधारणकारणम् । कार्यमात्रं प्रति सत्यं नैकेषु साधारणेषु कारणेषु मङ्गलं विलक्षणत्वं भजते । तद्विलक्षणत्वेन सर्वविधविघ्नध्वंसं प्रति असाधारणं कारणमुत्कम् । मङ्गलस्य कर्तव्यत्वे किं प्रमाणमिति जिज्ञासायां शिष्टाचारानुमितश्रुतिः एव प्रमाणत्वाद् उच्यते-मङ्गलादीनि मङ्गलमर्थानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीर्यरूपाणि च भवन्ति आसुप्तपुरुषाणि चाध्येतारश्च सिद्धार्थाः यथा स्युः इति । प्रारिप्सितग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्तिः मङ्गलस्य प्रमुखं प्रयोजनं भवति । अनुषङ्गतः शिष्यशिक्षावैयर्थ्याकाराणां श्रोतृगणानां मङ्गलाय च मङ्गलाचरणं क्रियते । त्रिविधं मङ्गलाचरणं शास्त्रे स्वीक्रियते । नमस्कारात्मकम् आशीर्वादात्मकं वस्तुनिर्देशात्मकं च । अस्य काशिकावृत्तिनामकग्रन्थस्य प्रणेतारौ जयादित्यवामनौ । ताभ्यां विरचिताः मङ्गलाचरणश्लोकाः वस्तुनिर्देशात्मकप्रकाराः सन्ति । ते च सन्ति त्रयः । वस्तुनिर्देशात्मकप्रकारे मङ्गलाचरणश्लोके ग्रन्थस्य

¹⁵⁵ Assistant Professor, Department of Sanskrit, Utkal University, Bhubaneswar-751004

प्रतिपादितविषयः प्रस्तूयते । वृत्ति-भाष्य-धातुपारायण-नामपारायणादिग्रन्थेषु विप्रकीर्णः व्याकरणसिद्धान्ताः काशिकावृत्तौ साररूपेण संगृहीताः वर्तन्ते । काशिकावृत्तौ प्राचीनानां व्याकरणग्रन्थानां सिद्धान्ताः संगृहीताः संक्षेपेण चोपस्थापिताः इत्येवं प्रथमश्लोकस्यार्थः । तत्र तन्त्रपदेन व्याकरणशास्त्रमभिप्रेतम् । द्वितीये तृतीये च श्लोके काशिकावृत्तेः गुणाः काशिकाकारेण प्रकीर्तिताः । तत्र इष्ट्युपसंख्यान-शुद्धगण-विवृतगूढसूत्रार्थ-व्युत्पन्नरूपसिद्धित्वं काशिकावृत्तमिति काशिकाकारेण वर्णितम् । इत्येतोऽनयेति इष्टिः । सूत्रेण असंगृहीतं कार्यं येन संगृह्यते तद् इष्टिपदेन उपसंख्यानपदेन वा उच्यते । काशिकायां संशोधितस्य गणपाठस्य सन्निवेशः वर्तते । अतः शुद्धगणा इति विशेषणं मङ्गलाचरणश्लोके प्रयुक्तम् । विवृतगूढसूत्रार्था इति विशेषणपदेन काशिका वृत्तिग्रन्थरूपेण परिचयं प्राप्नोति । सूत्राणां गूढाशयः येन ग्रन्थेन प्रतिपाद्यते सः ग्रन्थः वृत्तिग्रन्थत्वेनाभिधीयते । व्युत्पन्नरूपसिद्धिः इति विशेषणपदेन काशिकावृत्तिः उदाहरणविभूषिता भवति । उदाहरणमण्डिता काशिकावृत्तिरिति परिचयः अस्मात् मङ्गलाचरणश्लोकादेव ध्वन्यते । पाणिनीयव्याकरणे सूत्रक्रम-प्रक्रियाक्रमभेदेन द्विविधः ग्रन्थः समुपलभ्यते । पाणिनीयसूत्रक्रमम् अनुसरन् सूत्रार्थप्रतिपादकः ग्रन्थः लक्षणैकचक्षुप्रकारः उच्यते । शब्दरूपसिद्धिसकाशाद् प्रक्रियानुसारं सूत्रक्रमम् अनुसरन् प्रक्रियाग्रन्थः लक्ष्यैकचक्षुप्रकारः भवति । काशिकावृत्तिः यद्यपि लक्षणैकचक्षुप्रकारः ग्रन्थः, तथापि व्युत्पन्नरूपसिद्धिरिति विशेषणपदेन लक्ष्यैकचक्षुप्रकारग्रन्थत्वेन अभिव्यज्यते । तत्र काशिकायां 'न पदान्तद्विर्वचनवरेयतोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्त्विषुः', 'द्विर्वचनेऽपि' इत्येवं सूत्रद्वयमेव प्रमाणम् । अस्य सूत्रद्वयस्य व्याख्यानावसरे काशिकाव्याम् उदाहरणपदानां पदसिद्धिप्रक्रिया यथायथं प्रदर्शिता वर्तते । अन्तिममङ्गलाचरणश्लोके काशिकावृत्तिनामकः ग्रन्थः व्याकरणस्य शरीरत्वेन काशिकाकारेण वर्णयते । पाणिनीयसूत्राणि यत्र व्याकरणस्य आत्मा, तत्र काशिकावृत्तिः व्याकरणस्य शरीरमिति । यथा शरीरे विना आत्मनः स्थितिः न सम्भवति, तथैव काशिकावृत्तिमतिरित्य व्याकरणशास्त्रस्य कार्यं नैव पूर्णतां गच्छति । व्याकरणशास्त्रस्य शरीररूपा भवति काशिकावृत्तिः । महाभाष्यादिग्रन्थेषु व्याकरणस्य दार्शनिकः पक्षः विवेचितः वर्तते । व्याकरणस्य सकलं कार्यं काशिकायां सम्पन्नतां प्राप्नोति । एतादृशः मनोरमः अर्थः मङ्गलाचरणश्लोकादेव अभिव्यज्यते ।

२.० काशिकागतोदाहरणेषु अलङ्कारतात्त्वम्

काशिकायाम् 'अतंसत्वोः प्रतिषेधयोः प्रावां वत्वा' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रत्युदाहरणरूपेण अलङ्कारः इति शब्दः उपलभ्यते । भ्रूषणवचनोऽत्रालङ्कारः । अलङ्करणम् अलङ्कारः इत्येवं भावसाधनमिदं पदम् । साहित्यशास्त्रेऽपि हारादिवद् अलङ्काराः भवन्तीत्युच्यते । शब्दार्थयोः उत्कर्षप्रतिपादकाः काव्यरसोपकारकाश्च भवन्ति अनुप्रासोपमादयः अलङ्काराः ।

२.१ उपमालङ्कारः

अलङ्कारेषु उपमालङ्कारः प्राणभूतः भवति । अस्यालङ्कारस्य चत्वारि तत्त्वानि सर्वैः आलङ्कारिकैः स्वीक्रियन्ते । उपमेयः, उपमानम्, साधारणधर्मः, साधारणधर्मवाचकशब्दश्चेति चत्वारि तत्त्वानि उपमालङ्कारे प्रयुक्तानि भवन्ति । वाक्यस्य एकत्वे सति उपमानोपमेययोः वैधर्म्यरहितम् इवादिभिर्निपातैः, वयजादिभिः प्रत्ययैः उपमितादिभिः समासैवा प्रतिपाद्यं सादृश्यकथनम् एव उपमालङ्कारः भवति । उपमायाः प्रयोगः उपमेयस्य उत्कर्षप्रतिपादनार्थं क्रियते । यदा कमले मुखस्य उपमा प्रदीयते, तदा मुखस्य उत्कर्षप्रतिपादनं भवति । उपमेयोपमानयोः साधर्म्यत्वेन उपमालङ्कारस्य

चमत्कारिता समुपजायते। काशिकायाम् 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे उपमालङ्कारस्य उदाहरणानि प्राप्यन्ते। उपमीयतेःनेनेत्युपमानम्। उपमातुं योग्यमुपमेयम्। उपमानोपमेययोः साधारणो धर्मः सामान्यम्। शस्त्रीव श्यामा शस्त्रीश्यामा देवदत्ता, कुमुदश्वेनी, हंसर्गदा, न्यग्रोधपरिमण्डता इत्येतानि उदाहरणानि उपमालङ्कारस्य काशिकागतानि। अत्र श्यामगुणविशिष्टत्वेन प्रसिद्धत्वादुपमानं शस्त्री, उपमेया देवदत्ता, तयोः साधारणो धर्मः श्यामत्वम्, तदभिधाय तद्विशिष्टायां श्यामाशब्दः पर्यवस्यतीति भवति सामान्यवचनः। उपमालङ्कारस्य भेदद्वयं साहित्यशास्त्रे स्वीक्रियते। पूर्णोपमा तुषोपमा चेति। पूर्णोपमा च द्विविधा। श्रौती आर्था चेति। एतयोः वाक्यसमासतद्विगतत्वेन प्रत्येकं त्रयः त्रयः भेदाः प्राप्यन्ते। व्याकरणशास्त्राधारेण श्रौती समासगा, समासगा अर्था, तद्विदग्ना श्रौती, तद्विदग्ना आर्था इत्येषाम् अलङ्काराणां काशिकागतानि उदाहरणानि प्रस्तूयन्तेऽत्र। श्रौती समासगा इत्यलङ्कारस्य काशिकागतमुदाहरणमस्ति वाससी इव। अत्र 'इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन 'वाससी' इत्यस्य 'इव' इत्यनेन समासः विभक्त्यलोपश्च भवति। प्रोक्तवार्तिकज्ञानं विना 'श्रौती समासगा' इत्यलङ्कारस्य ज्ञानं नैव सम्भवति। साहित्यशास्त्रे चानुरूपमुदाहरणं प्राप्यते। अत्र 'वाससी इव' इति काशिकोदाहरणे 'श्रौती समासगा' इत्यलङ्कारस्य मूलभूतं तत्त्वं सन्निहितं वर्तते। तुल्यार्थकः तुल्य-सदृशशब्दानां उपमानवाचिशब्देन सह समासः व्याकरणे स्वीक्रियते। पाणिनीयव्याकरणे 'पूर्वसदृशसमोनाथकतद्विदग्नापुणमिश्रकङ्गणैः' इति सूत्रेण एतादृशाः समासाः विधीयन्ते। साहित्यशास्त्रे समासगा आर्था उपमा इत्यलङ्कारस्य उदाहरणानि एतादृशसमासनिष्ठानि प्राप्यन्ते। काशिकायां मातृसदृशः, पितृसमः इत्युदाहरणद्वयं प्राप्यते। अस्य समासस्य उदाहरणज्ञानं विना समासगा-अर्था-उपमाप्रकारस्य अलङ्कारस्य सम्यक् ज्ञानं नैव सम्भवति। साहित्यशास्त्रे तद्विदग्ना-श्रौती-उपमाप्रकारस्योदाहरणानि वतिप्रत्ययान्तानि भवन्ति। काशिकायां तृती 'तत्र तस्येव' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे तद्विदग्ना-श्रौती-उपमायाः उदाहरणानि निश्चितुं शक्यन्ते। मधुरायामिव मधुरावत् सुखे प्राकारः, पाततिपुत्रवत् साकेते परिखा, देवदत्तस्येव देवदत्तवत् यज्ञदत्तस्य गावः, यज्ञदत्तस्येव देवदत्तस्य दन्ताः यज्ञदत्तवत् इत्येतानि काशिकागतानि उदाहरणानि प्रसङ्गेऽस्मिन् तात्पर्यब्राह्मकाणि। एतेषाम् उदाहरणानां सम्यक् ज्ञानं विना तद्विदग्ना-श्रौतीप्रकारस्य उपमालङ्कारस्य बोधनं नैव जायते। साहित्यशास्त्रे तद्विदग्ना-आर्थाप्रकारस्य उपमालङ्कारस्यापि उदाहरणानि वतिप्रत्ययान्तानि। काशिकायां 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वृत्तिः' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रदत्तानि उदाहरणानि तद्विदग्ना-आर्थाप्रकारस्य उपमालङ्कारस्य भवितुमर्हन्ति। ब्रह्मणेन तुल्यं वर्तते ब्रह्मणवत्, राजवत् इत्येतानि उदाहरणानि तत्रत्यानि प्रसङ्गेऽस्मिन् द्रष्टव्यानि। उपमालङ्कारस्य अपरः भेदः तुषोपमालङ्कारः। तुषोपमायाश्च अपरे त्रयः भेदाः सन्ति। धर्मतुषा, उपमानतुषा वादितुषा चेति। यत्र उपमालङ्कारे साधारणधर्मः तुषः दृश्यते, सः धर्मतुषोपमालङ्कारः भवति। साहित्यशास्त्रे कल्पप्रत्ययान्तानि पदानि धर्मतुषप्रकारे उपमालङ्कारे व्यवहृतानि दृश्यन्ते। काशिकायाम् 'ईपदसमासो कल्पवदेभ्यदेभ्यः' इति सूत्रव्याख्यानावसरे धर्मतुषोपमाप्रकारस्योदाहरणानि प्राप्यन्ते। 'ईपदसमासः पटुः पटुकल्पः, मृदुकल्पः इत्येतानि उदाहरणानि धर्मतुषोपमालङ्कारस्य उदाहरणानि भवितुमर्हन्ति। एतेषु साधारणधर्मस्य तुषः जायते। वादितुषोपमालङ्कारस्य उदाहरणेषु वा-आदीनां लोपः जायते। साहित्यशास्त्रे वच्यप्रत्ययान्तशब्दानां व्यवहारः वादितुषोपमायां दृश्यते। काशिकायाम् उपमानादाचारे इति सूत्रव्याख्यानावसरे वादितुषोपमालङ्कारस्योदाहरणानि प्राप्यन्ते। पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्, प्रावारीयति कम्बलम्, प्रासादीयति कुड्ये, पर्यङ्कीयति मन्वके इत्येतानि काशिकागतोदाहरणानि प्रसङ्गेऽस्मिन् तात्पर्यब्राह्मकाणि सन्ति।

२.२ उत्प्रेक्षालङ्कारः
उपमानोपमेययोर्मध्ये तादात्म्ये या सम्भावना क्रियते, तत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः भवति। मन्वे, शङ्के, प्रायः, नूनम् इत्येतानि पदानि अलङ्कारेऽस्मिन् व्यवहृतानि दृश्यन्ते। उत्प्रेक्षा नाम सम्भावना। वर्णनीयस्य उपमेयस्य उपमानरूपेण सम्भावना क्रियते। उत्प्रेक्षणीयं सम्भावनीयं वस्तु जाति-गुण-क्रिया-द्रव्यभेदेन चतुर्विधं स्वीक्रियते। प्रकृतस्य उपमेयस्य अप्रकृतोपमानरूपेण सम्भावना यत्र भवति तत्र उत्प्रेक्षानामकः अलङ्कारः भवति। काशिकायां यथा-

अश्मानं टपदं मन्वे मन्वे काष्ठमुत्सूलाम्।
अन्धायारुतं सुतं मन्वे यस्य माता न पश्यति ॥

साहित्यशास्त्रे इवशब्दस्यापि प्रयोगः उत्प्रेक्षालङ्कारे प्राप्यते। काशिकायामपि 'ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे उत्प्रेक्षालङ्कारस्योदाहरणानि प्राप्यन्ते। मणीवोपद्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सरायै मम, दम्पतीव, जम्पतीव, रोदसीव इत्येतानि काशिकोदाहरणानि उत्प्रेक्षालङ्कारस्य भवितुमर्हन्ति। किञ्च काशिकायां 'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे पदामयोदाहरणश्लोकः प्राप्यते। यथा-

धूमायन्त इवाश्लिष्टाः प्रज्वलन्तीव संहताः।
उत्सुकानीव मेऽमी स्या ज्ञातयो भरतर्षभ ॥

उत्प्रेक्षालङ्कारस्य प्रयोगः श्लोकेऽस्मिन् दृश्यते। यद्यपि श्लोकोऽयं काशिकारेण उदाहररूपेण महाभारतात् संगृहीतः, तथापि काशिकाध्ययनवेलायां सहृदयानां व्याकरणविद्यार्थिनां कृते परमाह्लाददायकः वर्तते।

२.३ स्वभावोक्तिरलङ्कृतिः

साहित्यदर्पणानुसारं कथ्यते यत् - स्वभावोक्तिर्दुरुहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्। अर्थात् दुरुहयोः दुःखेययोः पदार्थस्य क्रियारूपयोः वेष्टास्वरूपयोः वर्णनेन स्वभावोक्तिनामकः अलङ्कारः भवति। जाति-गुण-क्रिया-द्रव्यरूपाणां विविधावस्थानु प्रकटितानां पदार्थानां स्वरूपकथनमे स्वभावोक्तिनामकः अलङ्कारः। काशिकायां 'क्षुद्रजन्तवः' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे क्षुद्रजन्तूनां स्वरूपकथनपरकः उदाहरणश्लोकः प्राप्यते। तद्यथा-

क्षुद्रजन्तुरनस्थः स्यादथ वा क्षुद्र एव सः।
शतं वा प्रसूतौ येषां केचिदानकुलादपि ॥

अत्र क्षुद्रजन्तुजातिमात्रस्य स्वभावकथनं काशिकाकारेणाभिप्रेतम्। अन्यत्र च 'नित्यमसिन् प्रजामेधयोः' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे एकः उदाहरणश्लोकः दृष्टिपथमायाति। तद्यथा-

श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकरस्याल्पमेधसः।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी ॥

अत्र काशिकाकारेण सूत्रार्थव्याख्यानेन साकं राज्ञः स्वाभाविकं बुद्धिवर्णनं विहितम्। अल्पमेधायुक्तस्य श्रोत्रियस्य बुद्धिरिव राज्ञः अनुवाकहता बुद्धिः तत्त्वार्थदर्शने न प्रभवति। इत्थं श्लोकेऽस्मिन् राज्ञः गुणमात्रस्य स्वरूपकथनहेतोः स्वभावोक्तिनामकः अलङ्कारः भवति।

आनन्दः वर्षशताद् अनन्तरमपि मनुष्यजीवने समागच्छति । अत एव कष्टकरात् तपश्चरणात् निवृत्तः तदर्थं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति मनुष्यः । काशिकायां रुजार्थानां भाववचनानामन्वयेः इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे काशिकारेण उपर्युक्तभावात्पेतः पद्यमयोदाहरणश्लोकः प्रदत्तः। स यथा -

एति जीवन्तमानन्दो नरे वर्षशतादपि ।
जीव पुत्रक मामैवं तपः साहसमावर ॥

‘सोऽपि तोषे वेत्पादपूरणम्’ इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे रामायणमहाभारतयोः विशिष्टानि चरित्राणि पद्यमयोदाहरणश्लोकेन उपदिष्टानि वर्तन्ते । तद्यथा-

सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥

६.० प्रत्याहारनिर्माणकौशलपरकस्य श्लोकस्य काव्यत्वविमर्शः

काशिकायां प्रत्याहाराणां निर्माणकौशलम् एकेन श्लोकेन वर्णितम् । अष्टाध्यायिसूत्रेषु पठिताः एकचत्वारिंशत् प्रत्याहाराः श्लोकमाध्यमेन उदाहृताः ।

तद्यथा-

एकस्मान् उन्नवताः द्वाभ्यां षः त्रिभ्य एव कणमाः स्युः ।
ज्ञेयो वर्यो वतुर्भ्यः २ः पञ्चभ्यः शलौ षड्भ्यः ॥

एकस्मात् अक्षरात् परः उन्नवताः स्युः इति वाच्यार्थः । उन्नवतैः एङ्, यञ्, अण्, छत्, अट् इति षच प्रत्यहाराः भवन्तीति तात्पर्यार्थः । द्वाभ्याम् अक्षराभ्यां परः षः स्यादिति वाच्यार्थः । षकारेण झप् भष् चेति द्वौ प्रत्याहारौ भवतः इति तात्पर्यार्थः । त्रिभ्यः अक्षरेभ्यः परः कणमाः स्युरिति वाच्यार्थः । कणमैः प्रत्येकं त्रयः त्रयः प्रत्याहाराः भवन्तीति तात्पर्यार्थः । अक्, इक्, उक् चेति षकारेण त्रयः । अण्, इण्, यण् इति षकारेण त्रयः । अम्, यम्, उम् चेति षकारेण त्रयः । साकल्येन कणमैः नव प्रत्याहाराः निर्मायन्ते । वतुर्भ्यः अक्षरेभ्यः परः वर्यो ज्ञेयो इति वाच्यार्थः । चकारकाराभ्यां प्रत्येकं चत्वारः चत्वारः प्रत्याहाराः भवन्तीति तात्पर्यार्थः । अक्, इक्, एक्, ऐक् चेति षकारेण चत्वारः । यक्, मक्, झक्, खक् चेति षकारेण चत्वारः । साकल्येन चत्वारिंशत् अष्टौ प्रत्याहाराः उपयान्ते । पञ्चभ्यः अक्षरेभ्यः परः रेफः प्राप्यते इति वाच्यार्थः । रेफेण षच प्रत्याहाराः इति तात्पर्यार्थः । यर्, झर्, खर्, चर्, शर् चेति रेफेण षच प्रत्याहाराः निष्पद्यन्ते । षड्भ्यः अक्षरेभ्यः परः शलौ तिष्ठतः इति वाच्यार्थः । शकारलकाराभ्यां प्रत्येकं षट् षट् प्रत्याहाराः प्रभवन्ति । अश्, हश्, वश्, झश्, जश्, बश् चेति शकारेण षट् प्रत्याहाराः । अत्, हत्, वत्, रत्, झत्, शत् चेति षट् । साकल्येन शकारलकाराभ्यां द्वादशसंख्यकाः प्रत्याहाराः समुपजायन्ते । श्लोकेऽस्मिन् आर्याछन्दसः प्रयोगः वर्तते ।

७.० काशिकागतानि मनोरञ्जकोदाहरणानि

पाणिनीयसूत्राणां व्याख्यानानुसारेण काशिकायां संगृहीतानि नैवऽपि उदाहरणानि मनोरञ्जकानि । तात्कालिकसमाजे प्रचलिताः हास्योदीपकाः शब्दाः सूत्रोदाहरणरूपेण स्वीकृताः । तादृशानाम् उदाहरणानां पठनेन सानन्दं सूत्रार्थज्ञानं जायते । एवमभूतानि कतिपयानि उदाहरणानि तात्त्विकपूर्णानि काव्यमहाकाव्यादिषु च प्रयुक्तानि दृश्यन्ते । एकस्मिन्नेव सूत्रे नकारादीनि एकादशसंख्यकानि उदाहरणानि काशिकायां सज्जितानि वर्तन्ते । नञ्समासे एतेषाम् उदाहरणानां गणना क्रियते ।

- नञ्च् - न भ्रजत इति नञ्च् (भ्रजतेः विवबन्तस्य नञ्समासः) । भ्रजू दीप्तौ इत्यस्माद् धातोः भ्रजभ्रस- इत्यादिना विवप्, जकारस्य व्रश्च- इत्यादिना षकारः, तस्य जश्त्वम्-ङकारः, तस्यापि चर्त्वम्-टकारः ।
- नपात् - न पातीति नपात् (पातिः शत्रन्तः) । पदमञ्जरीकरणे पादिति विवबन्तं स्वीक्रियते ।
- नवेदाः - न वेतीति नवेदाः (वेतिरनुप्रत्ययान्तः) ।
- नासत्याः - सत्सु साधवः सत्याः, न सत्या असत्याः, न असत्याः नासत्याः ।
- नमुचिः - न मुचतीति नमुचिः (मुच्येयौणादिकः किप्रत्ययः) ।
- नकुलतः - नास्य कुलमस्ति नकुलतः ।
- नखम् - नास्य खमस्ति नखम् ।
- नपुंसकम् - न स्त्री न पुमान्पुंसकम् (स्त्रीपुंसयोः पुंसकभावो निपात्यते) ।
- नक्षत्रम् - न क्षरते क्षीयते इति वा नक्षत्रम् । क्षियः, क्षरतेर्वा क्षत्रमिति निपात्यते ।
- नक्रमम् - न क्रामतीति नक्रमः (क्रमेडप्रत्ययो निपातनात्) ।
- नाकम् - नास्मिन्नकमस्ति नाकम् । कम् (सुखम्), अकम् (दुःखम्), तद्यत्र नास्ति स नाकः स्वर्गः ।

पदानां विशिष्टं न्यसनं समस्तपदानां प्रयोगे सम्भवति । पदविन्यासप्रसङ्गे सकारादीनि कतिपयानि काशिकोदाहरणानि तात्पर्यब्राह्मणानि । व्याकरणे समासदशायां समानस्य स इत्ययमादेशो भवति चरणे गम्यमाने ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । सब्रह्मचारी इत्युदाहरणं द्रष्टव्यम् । समानो ब्रह्मचारी सब्रह्मचारी । ब्रह्म(वेदः), तदध्ययनार्थं यद् व्रतं तदपि ब्रह्म, तत्त्वरतीति ब्रह्मचारी । तीर्थशब्दे उत्तरपदे यत्प्रत्ययपरे परतः समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । सतीर्थः इत्युदाहरणमत्र प्रदीयते । सतीर्थः एकगुरुकः समानोपाध्यायः इति समानार्थकानि पदानि भवन्ति । समाने तीर्थे वासीति सतीर्थः । तीर्थशब्देनेह गुरुच्यते । ‘अनेकमन्यपदार्थे’ इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रस्तुतं श्लोकोदाहरणं मनोरञ्जकं भवति । तद्यथा-

सुसूक्ष्मजटाकेशेन सुगजाजिनवाससा ।
समन्तशितिरन्ध्रेण द्वयोर्वृतौ न सिध्यति ॥

महाभाष्ये अस्य श्लोकस्य केवलं पूर्वार्थं पठितम् । काशिकायां श्लोकस्य उत्तरार्थं सन्निवेशितम् श्लोकपूर्णात् तृतीयान्तपदानां निर्देशः वर्तते । सुष्ठु सुक्ष्मा जटाः केशा अस्थेति वतुर्णा पदानां बहुव्रीहिः । अथवा सुष्ठु सुक्ष्म जटा येषु ते सुसूक्ष्मजटास्तादृशाः केशाः अस्थेति पुनर्बहुव्रीहिः । एवं सुष्ठु गजाजिनं वास आच्छादयन् यस्य तेन सुगजाजिनवाससा ।

बहुव्रीहिसमासस्य कतिपयानि मनोरञ्जकानि काशिकोदाहरणानि वर्तन्ते । 'तत्र तेनेदमिति स्रुपे' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रदत्तानि केशाकेशि, कचाकचि, दण्डादण्डि, मुसतामुसति इत्येतानि उदाहरणानि मनोरञ्जकानि ।

- केशेषु केशेषु च गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् -केशाकेशि
- कचेषु कचेषु च गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्- कचाकचि
- दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम् -दण्डादण्डि
- मुसलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्- मुसतामुसति

काव्यमहाकाव्यादिषु पदविन्यासस्य कृते उपयुज्यमानानि पदानि समस्तपदरूपेण उपलभ्यन्ते । नासिकायाः स्वरूपाधारेण उदाहरणकथनं ह्यस्योदीपकम् । दुरिव नासिकाऽस्य दुग्णसः । गौः इव नासिका अस्य गोनसः । उन्नता नासिकाऽस्य उन्नसः । विगता नासिकाऽस्य विन्नः । पादस्य आधारेण उदाहरणकथनं काशिकायां क्रियते । एष्या इव पादावस्य एणीपदः । अजस्येव पादावस्य अजपदः । प्रोष्ठस्य पादावस्य प्रोष्ठपादः । इत्थम् अहलः, अहलिः, दुर्हलः, दुर्हलिः, सुहलः, सुहलिः, असवथः, असविथः, सुसविथः इत्येतानि काशिकागतानि उदाहरणानि मनोरञ्जकानि 'अव्यक्तानुकरणं दृव्यजवराद्दनिताौ डाव्' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रदत्तानि पटपटाकरोति, दमदमाकरोति, खरखरटाकरोति, त्रपत्रपटाकरोति इत्येतानि उदाहरणानि च ह्यस्योदीपकानि । 'नगरात् कुत्सनाप्रवीणयोः' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे गद्यमयम् उदाहरणं वितार्ककं भवति । तथा- केनायं मुपितः पन्था गात्रे पक्ष्मातिधूसरः । इह नगरे मनुष्येण, सम्भाव्यात एतन्नगरकेण । चौस हि नागरका भवन्ति । केनेदं लिखितं चित्रं मनोनेत्रविकाशि यत् । इह नगरे मनुष्येण, सम्भाव्यात एतन्नगरकेण । प्रवीणा हि नागरका भवन्ति । काशिकायां 'द्वितीयात्करणपूर्वात्' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रदत्तं "सा हि तस्य धनक्रीता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी" इत्युदाहरणपदं मनोरञ्जकं भवति । किञ्च 'उपमानानि सामान्यवर्णैः', 'तत्पुरुषे समासे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' चेति सूत्रयोः व्याख्यानावसरे प्रदत्तानि हंसर्गदा, न्यबोधपरिमण्डला, दुर्वाकाण्डश्यामा इत्येतानि उदाहरणानि काव्यगतानि सन्ति एतेषाम् उदाहरणानां सम्बन्धोऽधोलिखितेन भङ्गिकाव्योद्भूतश्लोकेन सह स्थापयितुं शक्यते । तथा-

योपिद्वन्द्वारिका तस्य दयिता हंसगामिनी ।

दूर्वाकाण्डमित्थं श्यामा न्यबोधपरिमण्डला ॥

एवं 'प्रकाशनस्थेयारुच्योश्च' इति सूत्रस्य व्याख्यानावसरे प्रदत्तं 'संशस्य कार्णादिषु तिष्ठते यः' इत्युदाहरणं किरातार्जुनीयमहाकाव्ये दृश्यते । इत्थं नैकानि मनोरञ्जकानि काशिकोदाहरणानि सूत्रार्थबोधने रुचिं वर्धयन्ति ।

८.० प्राप्तिद्वान्ताः (Findings)

१. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यं व्यपदिश्यते । काशिकावृत्तौ संगृहीतानि उदाहरणानि च रमणीयानि ।
२. पाणिनीयसूत्राणां व्याख्यानावसरे नैके उदाहरणश्लोकाः सखन्द उपस्थापिताः । काशिकावृत्तेः मङ्गलाचरणश्लोकाः ग्रन्थस्य वैशिष्ट्यवर्णनपरकाः ।
३. रसालङ्कारयोः दृष्ट्या कतिपयानां काशिकोदाहरणां माहात्म्यं वर्तते एव ।

४. शब्दशक्तेः सिद्धान्ताः सूत्राणां व्याख्यानावसरे उदाहरणमाध्यमेन सम्यक् निर्दिष्टाः ।
५. काशिकायां वृत्तौ संगृहीताः कतिपयाः उपदेशपरकाः उदाहरणश्लोकाः विद्यार्थिनां महोपकारकाः भवन्ति ।
६. कतिपयानि रसात्मकानि उदाहरणानि च सूत्रार्थबोधने विद्यार्थिनाम् उत्साहं जनयन्ति ।

९.० उपसंहारः (Conclusion)

काशिकावृत्तौ पाणिनीयसूत्राणां विवेचनावसरे प्रदत्तोदाहरणानि सर्वशरूपोपकारकाणीति निर्णयः । उदाहरणान्वये पाणिनीयसूत्राणां क्रमशः प्रवृत्तिं बोधयन्ति । अत एव पाणिनीयव्याकरणे व्यावहारिकदृष्ट्या प्रवेशः काशिकोदाहरणद्वारेण साध्यः । किञ्चोदाहरणप्रत्युदाहरणैः सूत्रार्थबोधनस्येयं काशिकापद्धतिः साम्प्रतिककाले संस्कृतव्याकरणशिक्षणे परमसहायिका भवित्यति । काशिकोदाहरणानां साहित्यिकं वैशिष्ट्यं बहुमुखिशोधक्षेत्रे मार्गं प्रस्तुतिता संस्कृतं विहाय इतरभाषागवेषणाक्षेत्रे प्रवृत्तानां गवेषकानां कृतेऽपि काशिकाध्ययनं फलदायि भवति ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. Agrawala, V.S., *India as Known to Pāṇini*, University of Lucknow, Lucknow, 1953
2. Dash, RadhaMadhab, *Idioms in Kāśikā*, PratibhaPrakashan, Delhi, 1995
3. Grimal, F.(Ed), VenkatarajaSarma, V. (Ed.) Srivatsankacharya,V.(Ed.), Lakshminarasimham, S. (Ed.), *Pāṇinīyavyākaraṇodāharaṇakośaḥ*(Paninian Grammar through its Example), Vol.I , Vol.II&Vol.III(2), Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati, 2007
4. *Kāśikā, Vāmanajayādityaviracitā, Jayaśamkaralāltripāṭhinā sudhākaramālavīyen ca sampādītā*, Tarā Book Agency, Vāranāsi, 1984
5. Kane, P.V. (Ed.) *The Sāhityadarpaṇa*(Paricchedas I,II,X *Arthālaṅkāras* with exhaustive notes), MotilalBanarasidass Publishers Private Limited,Delhi, Fifth Edition-1965, Sixth Edition-1974, 1995 (Reprint)
6. Kielhorn, F. (Ed.), Abhyankar, KashinathYasudev, *The VyākaraṇaMahābhāṣya of Patanjali*, Third Edition, Pune, 1972

क्षीशक्तिभिः धर्मप्योषणम्कपिलः जानी¹³⁶

प्रमुखशब्दाः- संस्कृत, नरः-नाशी, प्रहेलिका, महाशक्तिस्वरूपा, महामायास्वरूपा, महाकालीस्वरूपा, महालक्ष्मीस्वरूपा, महासरस्वतीस्वरूपा, धर्मः, अधर्मः, धनः, पातिव्रत्यधर्मः, पारिवारिकसभ्यतानुकूलं, सिद्धिसंपन्नता, उच्चवैचारिकसंपदा, दैवियमनोभाव, नित्यधर्मः, नैमित्तिकधर्मः, सामान्य धर्मः, विशेष धर्मः, काम्य धर्मः, आपद्धर्मः इत्यादि।

शोधसारः- संस्कृत विना न संस्कृतिः एवं संस्कृतम् विना न भारतः इति। संस्कृतः देवभाषा वेदभाषा ऋषिमुनीनां-ज्ञानीध्यानीनाम्चेयं भाषा वर्तते। संस्कृतः ज्ञानविज्ञानयोरपि भाषा इति वयं जानीमः। भारतः धर्मप्राणः देशोऽस्ति। धर्मप्राणदेशे धर्मस्य पालनं ही भारतस्य विशेषता वर्तते। अस्माकं भारतीयानां कृते धर्मस्यपालनं, धर्मस्य अनुमोदनम्, धर्मस्य धारणं च अत्यावश्यकं अनिवार्यं चेति। धर्मपालने गृहस्थानां, वानप्रस्थानां, संन्यासीनां, पुरुषाणां, स्त्रीणां प्रति भिन्न-भिन्न धर्मः भवति। तेषु स्त्रीधर्माणां ज्ञातुं सर्वसु अनिवार्यम् च। सूर्ये तेजः, अग्नौ औष्ण्यम्, चन्द्रेषु शैत्यम्, अमृतं अमृतत्वम्, पृथिव्यां क्षमा, सिद्धे शौर्यम्, मानवेषु मानवता, सतीषु सतिवत्त्वम्, पितृषु वात्सल्यम्, पुत्रेषु मोहः, स्त्रीषु पातिव्रत्यम्, ब्राह्मणेषु ब्रह्मत्वम्, क्षत्रिये क्षात्रत्वम्, वैश्ये वैश्यत्वम्, ब्रह्मचारीषु ब्रह्मचर्यम्, गृहस्थेषु गार्हस्थ्यम्, वानप्रस्थाषु त्यागः, संन्यासीषु वैराग्यम् सर्वेषु वस्तुषु प्राणीषु विभिन्नाः धर्मा निहिताः सन्ति। तदेव सार्वभौमिकः धर्मः आत्मधर्मश्च। धर्मोऽयं आत्मा संरक्षते। धर्मस्य वधः धर्माणां कृतेऽश्रेयस्कः अस्ति।

‘तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यस्थितौ’¹³⁷

मनुष्यैः किं कर्तव्यं किं अकर्तव्यमेतत् शास्त्रं सूचयति।

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यस्याधारणं संयुक्तं स धर्मः इति निश्चितः।¹³⁸

धर्मः एव प्रजां धारयति। धर्तुं योग्यत्वात् धर्मः येन जीवत्याभ्युदयः संभवति, निःश्रेयसः, प्राप्ति भवति तद् धर्मः। यतोऽभ्युदयः निःश्रेयसः सिद्धिः स धर्मः। कोशकारैः धर्मः पुण्यम्, न्यायम्, आचारः शब्दाः पर्यायत्वेन स्वीकृताः।

विश्वामित्रेण उक्तम्- आर्यगणः यं प्रशंसन्ति तदेव धर्मः तथा यं निन्दन्ति तदेवाधर्मः-

यमार्याः क्रियमाणं तु शंसन्त्यागमवेदिनः।

स धर्मो यं विगर्हन्ते तमधर्मं प्रवक्षते।।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।¹³⁹

¹³⁶ सहायक व्याख्याता, के. जे. इन्स्टीट्यूट ओफ़् आर्यवेद एण्ड रिसर्च, सावली, बडोदरा

¹³⁷ श्रीमद्भागवतीता. १६/२४

¹³⁸ महाभारतम् कर्णपर्वम् ६९/५८

¹³⁹ मनुस्मृतिः. २/६

यज्ञः लोकोपकारश्च देवानां धर्मः, योगसिद्धिः सिद्धानां धर्मः, नृत्यगीते गन्धर्वाणां धर्मः, जपतपांसि ज्ञानध्यानानि ऋषिणां धर्मः, दानयज्ञदयाशौचाहिसाभक्तयः मानवानां धर्मः पातिव्रत्यम्, वात्सल्यम्, स्नेहः लज्जा, दया, भक्तिः सतीत्वं स्त्रीणां धर्मः वर्तते। बुद्धिमान् पुरुषः सर्वदा धर्माश्रयीभूतो भवेत्। अधर्मेण समाजस्य देशस्य शान्तिः हीयते। सनातनो धर्मः कल्याणप्रदायको वर्तते। अस्मिन्नेव विश्वशांति निहितम् अस्ति। धर्मवृद्धौ सत्यां प्राणीनां वृद्धिः सञ्जायते। धर्मक्षीणे प्राणीः क्षीणो भवति। तदर्थं धर्मस्य नाशं न कल्पयामः कदापि।

धर्मं वर्धति वर्धन्ते सर्वभूतानि सर्वदा।

तरिम्न हसति हीयन्ते तस्माद्धर्मं न तोषयेत्।¹⁴⁰

धर्मः अस्मान् बोधयति यत् धर्मस्य नाम्ना कुकृत्यं न करणीयम्। यः धर्मः अन्यद् धर्मं बाधते वा कलाहार्थं प्रेरयति सः अधर्मः -

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मं तत्।

अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमा।¹⁴¹

भारतीयसाहित्येषु स्त्रीणां कृते वामाङ्गी, दक्षिणाङ्गी पदेन आर्यैः पुरुषैरङ्गीकृतम्। वामाः स्त्रियः पत्युः सहचरी भूत्वा पशुदर्शिका, कार्यसाधिका, मार्गदर्शिका तथा पत्युः अनुपस्थितौ गृहस्य परिवारस्य संरक्षिका भवन्ति। दक्षिणाङ्ग्यः स्त्रियः पत्युः पन्थोपरि प्रवतन्ति तथा पातिव्रत्ययुक्ता, पत्युराज्ञापालनकर्त्री उतमलोक प्राप्तकर्त्री भवन्ति। स्त्रीषु सत्वरजः तमांसि गुणाः अवतिष्ठन्ति। स्त्रीषु अक्षय क्रियाशक्तिः ज्ञानशक्तिः ईच्छाशक्तिनां क्रियाज्ञानेच्छाशक्तिनां संस्करणं भवति। अत एव एतेषु तावेषु अवधानेषु स्त्रियाः देविस्वरूपा भवन्ति।

स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।¹⁴²

स्त्रीणाम् उत्पत्तिः हेतुः बृहदारण्यकोपनिषदि उक्तं यदा एकाकी पुरुषः संसारे भराम् अनुभूतवान् तदा तेनानन्दः

न प्राप्तः। सः स्वस्मिन् भुक्तिः एष्टवान् तदा स्त्री प्रादुर्भूता। संसारस्य पुरुषस्य पूर्णतार्थे स्त्रियः सच्चाताः-

स इममेवात्मानं द्वेषा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

तस्मादिदमर्थबृगतमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः।¹⁴³

शतपथब्राह्मणे उक्तम्- पुरुषः स्त्रीणाम् अर्धांशः वर्तते-

अर्थो ह वा एष आत्मनो यज्जायेति।¹⁴⁴

व्याससहितायां लिखितम् अस्ति यत् यावत् पर्यन्तं स्त्रीप्राप्ति न भवति तावत्पर्यन्तं पुरुषः अपूर्ण एव -

¹⁴⁰ महाभारतम् शान्तिपर्वम् ९०/१७

¹⁴¹ महाभारतम् वनपर्वम् १३१/११

¹⁴² दुर्गासप्तशतीः ११/६

¹⁴³ बृहदारण्यकोपनिषद् १/४/३

¹⁴⁴ शतपथब्राह्मण ५/२/२/१०

यावन्न विन्दते जायां तावदर्थो भवेत् पुमान्॥¹⁴⁵

भारतीयसमाजे स्त्रीणां कृते सहधर्मचारिणी शब्दं प्रयुज्य सर्वोच्च स्थानं धर्मशास्त्रेण प्रदत्तः। शास्त्रीयविधाने पुरुषैः सह स्त्रीणां सम्बन्धः स्थापितो सति पत्नी इत्युच्यते। पत्नी पुरुषस्य अर्धांशः वर्तते। पत्नी साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा वर्तते। पुरुषैः सम्मानितं स्त्रियाः वैदिकं नाम 'मैना' वर्तते। एक तेज द्वे नाम' एकस्यैव तत्त्वस्य भागद्वयं वर्तते। तयोः नाम स्त्री पुरुषश्च वा नर-नारी इति-

एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवनामकम्॥¹⁴⁶

एकं तत्त्वं बहुधा ईक्षन्ते। नरः शिवः, तर्हि नारी शिवा, नरः नारायणः तर्हि नारी नारायणी वर्तते। नरः यदि संतप्यते वेत स्त्रियः तं शीतलतां यच्छति। यदि नरः क्रोधः तर्हि नारी शान्तिः, यदि नरः भर्ता तर्हि नारी भार्या, यदि नरः गृहस्वामी तर्हि नारी गृहस्वामिनी, यदि नरः कर्ता तर्हि नारी क्रिया, यदि नरः भुक्तिः, तर्हि नारी मुक्तिः वर्तते। नरनाथो, स्त्रीपुरुषौ पतिपत्न्यौ एकस्यैव तेजपुत्रस्य द्वे ज्योतिः वर्तते। स्त्रियं पुरुषाणां कृते सर्वदा प्रहेलिका स्वरूपाः वर्तन्ते। किन्तु यद्युना पश्चिमप्रभावात् स्त्रियः स्वस्य कृते एव प्रहेलिका सञ्जाताः। स्त्रिय स्वगृहस्य लक्ष्म्यः सन्ति। सुतस्य माता, पत्युः संगिनी, देशस्थ सेविका, विश्वस्य शक्तिः वर्तते। स्त्री अनुरागमयी वर्तते। स्वजनेष्वनुरागी भूत्वा कस्यापि परिस्थितौ स्थातुं शक्नोति। स्त्रियः स्वस्यानुरागस्य पुरुषस्योपरि अन्या यदि अनुरागं करोति वेदभीष्टं न भवन्ति। स्त्रियः महाशक्तिस्वरूपाः अपि वर्तन्ते। स्त्री प्रेरणा पुरुषः गौरवान्वितो भवति तथा अजेयः भवितुम् इच्छति, स महादेवि भवति। स्त्रियः महामायास्वरूपा अपि वर्तते। स्त्रीपु सम्मोहनं आकर्षणं स्वभावतः वर्तते। स्त्री उत्सर्गमयी वर्तते। स्त्रियः स्वजानान् कृते सर्वं कृत्वापि तान् प्रति समर्पिता भवन्ति। स्त्रीणां आत्मनः स्वार्थः कदापि न भवति किन्तु परिवारस्य कृते एव भवति। यदा परिवारस्य उपरि काचित् समस्या पतति तदा महाकाली भूत्वा संरक्षिका भवति। बालकानाम् आरम्भिकशिक्षासु महासरस्वतीस्वरूपा वर्तते। स्त्रीभिः प्रदत्ता शिक्षा अक्षय्य भूत्वा प्रशस्तमयी बुद्धिरूपादयति। यदा सा धनवस्त्रादीनां संरक्षणं तथा संवर्धनं करोति तदा सैव महालक्ष्मीस्वरूपा वर्तते। मानवजीवनं स्त्रियं विना अपूर्णम् इव विभाति। स्त्रीणां जीवनं यदा न्याययोग्यः तदेव धर्म इति। यद्विपरितः अनावारः तदेवाधर्मः।

आरम्भो न्याययुक्तो यः स ही धर्म इति स्मृतः।

अनावारस्त्वधर्मोति पतच्छिष्टानुशासनम्॥¹⁴⁷

वेदेषु प्रतिपादितं कर्तव्याकर्तव्यम् अपि धर्मस्य प्रथमं लक्षणं वर्तते। ये धर्मं विजानन्ति तेषां मते सत्यं सारत्त्वच्य सर्वोत्तमधर्मः वर्तते। सहजता एव उत्तमावस्था वर्तते। यद्वेदेन प्रतिपादितं सत्येन च प्रतिष्ठितम्। भगवान् शङ्करः पार्वतीं गृहस्थधर्मान् वदन कथयति-

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्

शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यं धर्म उत्तमः॥¹⁴⁸

¹⁴⁵ व्यास स्मृतिः. २/४

¹⁴⁶ निरुक्तम्. ३/२१

¹⁴⁷ महाभारतम्. वनपर्वम्. २०७/७७

¹⁴⁸ महाभारतम्. अनुशासनपर्वम्. दानधर्मपर्वम्. १४१/२५

अहिंसा, सत्यं, सर्वभूतेषु अनुकम्पा, इन्द्रियाणां शमः, यथाशक्तिदानं, गृहस्थस्य उत्तम धर्मः वर्तन्ते। परपुरुषस्य वा परस्त्रीणां सेवनं न कर्तव्यम्, आचारस्य रक्षा, स्त्रीरक्षा, अपरिब्रूहिता, मांसादिनां भक्षणं न कर्तव्यम् इति धर्मस्य पञ्चभेदाः सन्ति। भेदस्य नैकाः शाखाः वर्तन्ते। महाभारतस्य अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वे पार्वती शिवं स्त्रीधर्मान् विषये जिज्ञासति तदा शिवः उक्तवान्। स्त्रियैः शक्तिः देवगुरुपितृयाचकानां सत्कारः करणीयः। वृद्धानाम् अभिवादनं, प्राणीनाम् अहिंसनम्, सत्यप्रतिज्ञं, श्रणगतवत्सला, गौसेवा, आतिथ्यसत्कारम्, ब्रह्मचर्यपालनम्, परपुरुष वा परस्त्रीणां संसर्गः न कर्तव्यम् सदाचारैः क्षमाशीलैः धर्मपालनम् एते उत्तमधर्माः सन्ति। जीवने धर्मस्य धनस्य च बहुमद्वत् अस्ति। धनं गृहस्थीनां सहायकं । धनमेव धर्मस्य साधनम् अस्ति। धनेनैव सर्वम् प्रतिष्ठितम्। धनिनः एव लोके जीवन्ति। ये निर्धनाः नराः ते मृताः भवन्ति-

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।

जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः॥¹⁴⁹

धने केवतं सुखस्यांशः भवति। परं सुखं तु धर्मे एव वर्तते -

धने सुख कला काचिद् धर्मे तु परमं सुखम्¹⁵⁰

धनस्य अभिलाषा वर्तते सा स्त्री ता एव महालक्ष्मी इत्युच्यते। लक्ष्मीसम्पन्नाः स्त्रियः भवन्ति या उत्तमगुणसंयुक्ताः, देवब्राह्मणसेवायाम् उदात्ता भवेयुः गौसेवायां तत्पराः एवं धान्यादि संब्रूहिता स्त्रियः लक्ष्मीसम्पन्ना भवन्ति।

वसामि स्त्रीषु कान्तासु देवद्विजपरासु वा

विशुद्धगृहभान्दासु गोधान्याभिरतासु वा॥¹⁵¹

याः स्त्रियः सत्यमेव आचरन्ति, दर्शनीयाः, श्रेयस्कस्वैचारिकाः, सौभाग्यगुणयुक्ताः, पातिव्रत्याः कल्याण्यः, आचारवत्याः वस्त्राभूषणविभूषिताः भवन्ति ताः साक्षात् लक्ष्म्याः सान्निध्यं प्राप्नोति -

सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु : सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु।

वसामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु॥¹⁵²

प्राचक्षेण लक्ष्मीः अत्र न विराजते। सशरीरे तु लक्ष्मीः नारायणेन सह विराजते। यत्र लक्ष्मीः शुभाः, यत्र लक्ष्म्याः निवासः तत्र धर्म एव यवति। यशोवृद्धि सञ्चायते, धनोपार्जनं भवति। इच्छा परिपूर्वते।

नाहं शरीरेण वसामि देवि, नैव मया शक्यमिहाभिधातुम्।

भावेन यस्मिन् निवसामि पुंसिं, स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः॥¹⁵³

धनस्य अपेक्षया धर्मः वास्तविकरीत्या आपत्तिः रहितं वर्तते। यदि मानवः लोभं, प्रमादं, आलस्यं त्यजति चेत् धर्मः एव ही श्रेष्ठ पदं वर्तते। पुरुषैः सर्वदा स्त्रीणां सम्मानं कृतम्। हिन्दु संस्कृतौ स्त्रियः पूज्याः वर्तन्ते -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते स्मन्ते देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तप्राफलाः क्रियाः॥

¹⁴⁹ महाभारतम्. उद्योगपर्वम्. भगवद्गीतापर्वम्. ७२/२३

¹⁵⁰ महाभारतम्. शान्तिपर्वम्. मोक्षधर्मपर्वम्. २७१/५६

¹⁵¹ महाभारतम्. अनुशासनपर्वम्. दानधर्मपर्वम्. ११/११

¹⁵² महाभारतम्. अनुशासनपर्वम्. दानधर्मपर्वम्. ११/१४

¹⁵³ महाभारतम्. अनुशासनपर्वम्. दानधर्मपर्वम्. ११/२१

भारतीयसंस्कृतौ स्त्रीणां कृते शाब्दिकभावना न केवली प्रदर्शिता किन्तु गृहस्थजीवने प्रतिपदं सार्थकं च प्रदर्शितम्। धर्माशास्त्रं स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं न अपहरति किन्तु संरक्षणार्थम् आदिशति। स्त्रीणाम् संरक्षणं पुरुषाणां कृते भारतुल्यं नास्ति। पुरुषस्य स्त्रीसंरक्षणं धर्मः कर्तव्यञ्च वर्तते। धर्मशास्त्रं स्त्रियं प्रति महत्त्वपूर्णं, यशस्करोञ्च वर्तते। स्त्रीधर्मेषु “पातिव्रत्यधर्मः” सर्वश्रेष्ठः धर्मः वर्तते। एतद् पातिव्रत्यधर्मं पालनस्य आधिदैविकः लाभः वर्तते। अणिमादयः अष्टौ सिद्धयः स्त्रियः अनायासेन पातिव्रत्यधर्मपालनेन प्राप्यते। महाभारते द्रौपदीकुन्तीगान्धारी सत्यवती शैल्याऽनसूयारून्धत्यः स्त्रियः पातिव्रत्यपालनेन त्रिकालदर्शितां सिद्धिसम्पन्नतां च प्राप्नुवन्ति स्म। अधुनापि पातिव्रत्याचरणेन असाधारणाः शक्तयः प्राप्तुं शक्नुवन्ति नात्र कोऽपि सन्देहः कारणमेवा तदेव भूमिः वर्तते। पातिव्रत्याचरणेन जीवनं सुखमयं, संतानं युक्तं, पारिवारिकसभ्यतानुकूलं आधिभौतिकसुखं सम्पन्नं भवति। पातिव्रत्येन मनःधर्ममयम्, उच्चवैचारिकसंपदा, दैवियमनोभाव वृद्धिः, आध्यात्मिकसुखानुभूत्यादयः प्राप्यते। स्त्री धर्मे एकस्याः स्त्रियाः षड्विधा धर्माः भवन्ति-

१. नित्यधर्मः- नित्यधर्माचरणेन पापं न भवति पुण्यमपि ना एषः धर्मः सहजावस्थां नैतिककार्यं च कृत्यञ्च प्रदर्शयति। प्रातः कालादारभ्य निशाकालपर्यन्तं धर्ममयं दिवसयापनं नित्यः धर्मः अस्ति।

२. नैमित्तिकधर्मः- धर्मः जीवनेऽस्माकं बहुवारं समायाति। विशेषकार्यार्थं विशेषकर्मं स्योपादनं नैमित्तिकं इत्युच्यते। यथा-व्रताः, विवाहः, यज्ञोपवीतम् इत्यादयः संस्काराः नैमित्तिकाः सन्ति। निमित्तस्य शक्त्यः अधिकं लाभं वाञ्छितुं क्रियमाणं कर्म नैमित्तिकं इत्युच्यते।

३. सामान्यधर्मः- सामान्यधर्मेषु सत्यार्हिसापरिग्रहसंतोषेन्द्रियसंयमश्रद्धाशौचादीनां समावेशो भवति। सत्यं, दया, तपः शौचं, तितिक्षा, ईक्षा, शमः, दमः, अहिंसा, ब्रह्मचर्यम्, त्यागः, स्वाध्यायः, अर्जवम्, सन्तोषः, समहृत्, सेवा, मौनम्, आत्मविमर्शनम्, भगवद् श्रवणम्, कीर्तनम्, स्मरणम्, भगवदात्मसमर्पणम् इत्यादि लक्षणानां धर्मानां पालनेने सर्वात्मा भगवान् तुष्यति।

४. विशेषधर्मः- स्त्रीणां पितरं प्रति, पुत्रं प्रति, पतिं प्रति, स्वजनं प्रति, भूतं प्रति विभिन्नाः धर्माः सन्ति। स्त्रीणां परस्परं नैके सम्बन्धाः सन्ति तथा कर्तव्यं अपि भिन्नं वर्तते। स्थितिः, स्थानं, अवस्था, व्यक्तिश्च परित्यक्त्य विशेषधर्मः निर्धार्यन्ते।

५. काम्यधर्मः- कामनायाः पूर्त्यर्थं सामान्य धर्मात् किमपि वैशिष्ट्यातिवैशिष्ट्यं युक्तं क्रियमाणं कर्म काम्यधर्मः इत्युच्यते। यथा-कस्यापि कार्यस्य सिद्ध्यर्थं व्रतं जपः तपः अनुष्ठानम् इत्यादयः काम्यकर्मात्मकं काम्यधर्माः सन्ति।

६. आपद्धर्मः- स्त्रियः सर्वदा सामान्यस्थितौ न भवति। रोगशोकदुःखादयश्च तासां जीवने समागच्छन्ति तदा प्राणात्मरक्षार्थं अविहितमपि कर्म यदि संपादनीयं भवति चेत् तद् आपद्धर्मः उच्यते। अर्थकाममोक्षाणां मूलं धर्मः वर्तते। धर्मात् अर्थश्च कामश्च जायते।

अर्थकाममोक्षाः यदि धर्मेण सिद्ध्यते चेत् कथं धर्माचरणं न क्रियते? –

उर्ध्वबाहुविरोक्षेण न च कश्चिच्छृणोति मे।

धर्मार्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।¹⁵⁴

गृहे प्रतिदिनं जायमाना पूजा, जपः, शुभकर्मम्, यज्ञः, दानेत्यादिनां पोषकः स्त्रिय एव वर्तन्ते। अस्माकमाचारः परितः उपस्थितान् जनान् प्रेरयति प्रत्येकं व्यक्तिः यस्य कस्यापि आदर्शः भवति अतः धर्ममयाचरणेन प्रभाविताः जनारपि धर्माश्रितः भविष्यन्ति। सर्वेभ्यः स्त्रीभिः परिचारिका न भवत्यं अपितु गृहस्वामिनि, गृहसाम्राज्ञी, गृहलक्ष्मी वा भवितव्या तदानीम् एव धर्मस्य रक्षणं, पोषणं, संवर्धनं भविष्यते। तदा ही संस्कारवन्तः सुप्रजाः प्रजनिष्यन्ति।

सन्दर्भग्रन्थसूची

Sl	First Name	Last Name	Title	Editor/Commentator etc.	City	Publication	Year
1.	महर्षि	वेदव्यासः	महाभारतम्(पद- खण्डानि)	रामनाथयणदाताशास्त्री	गोरखपुरम्	गीताप्रेसः गोरखपुरम्	संवत् २०७२
2.	महर्षि	वेदव्यासः	श्रीमद्भगवद्गीता	जयदयालनोयनका	गोरखपुरम्	गीताप्रेसः गोरखपुरम्	संवत् २०७०
3.	कुल्लुफ	भट्टः	मनुरमृतिः	पण्डित रामेश्वरभट्ट	वाराणसी	चौखम्बासंस्कृत प्रतिष्ठान	वर्ष २०१५
4.	महर्षि	मार्कण्डेयः	दुर्गासप्तशतीः	रामनाथयणदाताशास्त्री	गोरखपुरम्	गीताप्रेसः गोरखपुरम्	वर्ष २०१३
5.	आदि	शङ्कराचार्यः	बृहदारण्यकोपनिषद्	प्रो. राजाराम	ताहौर	वाग्भैमशील प्रेस	संवत् १९७०
6.	ऋषि	याज्ञवल्क्यः	शतपथब्राह्मणग्रन्थः	श्रीहरिरचामि	वाराणसी	चौखम्बासंस्कृत भवनम्	वर्ष २०१२
7.	महर्षि	वेदव्यासः	व्याससंहिता	प. श्यामसुन्दर त्रिपाठी	वाराणसी	चौखम्बासंस्कृत भवनम्	वर्ष २००८
8.	महर्षि	यारकमुनिः	निरुक्तम्	उमाशंकर शर्मा	मुंबई	शेखराजश्रीकृष्ण दास	वर्ष १९६६

¹⁵⁴. महाभारतम्, स्वर्गरोहणपर्वम्, ५/६२

महर्षि दयानन्द की शिक्षा पद्धति का व्यावहारिक पक्ष : एक दृष्टि
(व्यवहारभानु के विशेष संदर्भ में)
अनामिका¹⁵⁵

प्रमुखशब्द

शोधसार- आत्मावलोकन के लिए शिक्षा आज भी एक सशक्त माध्यम है। भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति का इतिहास वैदिक युग से ही प्रारम्भ होता है। यदि भारत का पुरातन साहित्य एवं संस्कृति एक संवित निधि है तो इस निधि को युवा वर्ग तक पहुंचाना अत्यंत आवश्यक है। दूरदर्शी दयानन्द की शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र की उन्नति था। उन्होंने वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर अपनी शिक्षण पद्धति प्रस्तुत की जिसमें जीवन के व्यावहारिक पक्षों पर विशेष बल दिया गया। नारी शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, सर्वसमान शिक्षा इत्यादि दयानन्द शिक्षा पद्धति के ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं जिन्हें दयानन्द ने सर्वप्रथम प्रतिपादित किया और इनका वर्तमान शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय वर्तमान शिक्षा पद्धति को आगामी पीढ़ी में मानवीय गुणों को विकसित करने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे ताकि वे भविष्य की चुनौतियों के लिए सक्षम बन सकें। प्रस्तुत शोध पत्र में दयानन्द शिक्षा पद्धति में उल्लिखित जीवनोपयोगी व्यावहारिक विषयों की संक्षिप्त रूप से चर्चा की गई है।

किसी भी काल की शिक्षा का उद्देश्य मानव जीवन की उन्नति एवं विकास के तक्ष्य से भिन्न नहीं हो सकता। मानव जीवन की सफलता हेतु संयम, नैतिकता, सौहार्द एवं विनम्रता इत्यादि व्यावहारिक गुणों की आवश्यकता होती है। अतः प्रवर्तित शिक्षा पद्धति से यह अपेक्षा की जाती है कि उसमें छात्रों को वांछित गुणों को ब्रह्मण करने का सामर्थ्य हो। वास्तविक रूप में शिक्षा तभी फलीभूत है जब वह मनुष्य को जीवन के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बना सके। जिससे मनुष्य का जीवन संतुलित एवं उत्तम बने।

वैदिक काल में यह माना जाता था कि मनुष्य छत्र जीवन में अनुशासित जीवन व्यतीतकरके भविष्य के लिए अद्वितीय शक्ति प्राप्त कर लेता है। उस समय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मस्तिष्क को अनुशासित करना था ताकि बालक दुश्चरित्र से दूर रह सके। शिक्षा के माध्यम से बालक की तामसिक और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण किया जाता था जिससे वह सदसत् का भेद करने में समर्थ होता था। वैदिक युग में शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति का व्यवसायीकरण नहीं हुआ था। लोग वास्तविक एवं संपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही विद्या का अध्ययन करते थे।¹ उस समय यह माना जाता था कि यदि कोई योद्धा युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करता है कोई राजा प्रशासन में सफल होता है, कोई व्यापारी लाभ कमाता है तो यह उसके छत्र जीवन की शिक्षा का ही परिणाम है। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक युगीन शिक्षा पद्धति व्यवहारपरक थी।¹

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर ही अपनी पठन-पाठन व्यवस्था प्रस्तुत की। शिक्षा के सैद्धांतिक रूप के साथ-साथ उन्होंने छात्रों को जीवनोपयोगी व्यावहारिकता का ज्ञान देने के लिए व्यावहारिक-शिक्षा

¹⁵⁵ शोधच्छात्रा, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

से संबंधित पुस्तकों की रचना भी की। उन्होंने इस बात को भलीभांति अनुभव किया कि ब्रह्मण की हुई शिक्षा जब तक व्यावहारिक रूप धारण नहीं करती तब तक शिक्षा मात्र औपचारिकता बनकर रह जाती है।

दयानन्द शिक्षा को व्यवहार एवं आचरण में ढालने के पक्षधर थे। उन्होंने विद्यार्थियों को व्यावहारिक शिक्षा का ज्ञान देने के लिए व्यवहारभानु जैसी तपु पुस्तकों की रचना की ताकि इन सरल एवं सुबोध पुस्तकों से सहज ही शिक्षा लेकर मनुष्य अपने आचरण एवं व्यवहार में सुधार ला सके। पठन-पाठन व्यवस्था के संदर्भ में दयानन्द की तृतीय पुस्तक व्यवहारभानु की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट उद्घोष किया है कि इसको रचने का उद्देश्य मात्र इतना है कि इस से प्रेरित होकर मनुष्य स्वयं का अपनी संतान का और विद्यार्थियों का आचरण उत्तम करे जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य स्वयं भी सुखी रहेगा और संतान एवं विद्यार्थी भी सुखी रहेंगे। यह पुस्तक मार्च, १८८० में वैदिक यन्त्रालय, वाराणसी से प्रकाशित हुई थी। सदाचार और सद्व्यवहार के कितने ही विषयों का इसमें प्रश्न और उत्तर के रूप में प्रतिपादन है, और विषय को स्पष्ट करने के लिए कतिपय कहानियाँ भी इसमें दी गई हैं। गुरु और शिष्य, पति और पत्नी, माता-पिता और सन्तान, राजा और प्रजा आदि में परस्पर क्या सम्बन्ध होना चाहिए, सत्य का क्या स्वरूप है, ब्रह्मचर्य के क्या साम हैं, कारोबार और व्यापार में नैतिकता और औचित्य के किन नियमों का पालन किया जाना चाहिए वे तथा इसी प्रकार के कितने ही विषय हैं, जिनका इस पुस्तक में रोचक व हृदयग्राही रूप से निरूपण किया गया है। पुस्तक हिन्दी में है। इसकी भाषा इतनी सरल और शैली इतनी आकर्षक है, कि इसे हिन्दी गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस तपु पुस्तिका में प्रत्येक आयुवर्ग के मनुष्य के लिए उपयोगी व्यवहारों तथा शिष्टाचारों की शिक्षा दी गई है। इसमें मनुस्मृति, महाभारत, निरुक्त इत्यादि अनुकरणीय ग्रंथों से लिए गए उदाहरण, रोचक दृष्टान्तकथाएं एवं उपाख्यान इसकी रोचकता को बढ़ाते हैं।

शिक्षा परिवर्तन का सक्षम साधन है। अतः दयानन्द ने अपने छात्रों को व्यावहारिक रूप से भी शिक्षित करने का प्रयास किया। शिक्षा को परिभाषित करते हुए दयानन्द कहते हैं कि जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनंदित हो सके वह शिक्षा कहलाती है। विद्या और अविद्या के अंतर को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेकर अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सके वह विद्या और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उल्टा जानकर अपना और परया अनुपकार करे वह अविद्या कहलाती है।

उन्होंने शिक्षा को एक निश्चित आयु मात्र से न जोड़कर जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया माना है। दयानन्द के अनुसार सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना चाहिए इसलिए यह बालक से लेकर वृद्धपर्यंत मनुष्यों के सुधार के लिए व्यवहार संबंधी शिक्षा का विधान किया जाता है।* वास्तविक रूप में शिक्षित मानव वही है जिसका शिक्षित होना उसके व्यवहार में दृष्टिगोचर हो। महाभारत से उदाहरण लेकर दयानन्द ने विद्या ब्रह्मण के चार प्रकारों का वर्णन किया है-

1 आगम

2 स्वाध्याय

3 प्रवचन

4 व्यवहार काल

अंततः इन्होंने व्यवहार में प्रदर्शित करने को ही विद्या की परिणीति माना है।* विद्यार्थियों को सचेत करते हुए दयानन्द लिखते हैं कि विद्यार्थी विषयों के सुख से अवश्य अलग रहें नहीं तो परम धर्म रूप विद्या का पढ़ना- पढ़ाना कभी नहीं हो सकेगा।** स्वामी दयानन्द शिक्षा को विद्यार्थियों के लिए ही तप नहीं मानते थे अपितु इसको प्रदान करने वाले आचार्यों से भी उतने ही कठोर तप की अपेक्षा रखते थे। आचार्य के गुणों पर प्रकाश डालते हुए दयानन्द लिखते हैं कि जो विद्यार्थियों को अत्यंत प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या देने के लिए तन मन और धन से प्रयत्न करे उसे आचार्य कहते हैं।**

विद्यार्थी को चाहिए मिथ्या को छोड़कर सदैव सत्य बोले, सरल रहे, अभिमान न करे, गुरु की आज्ञा का पालन करे, स्तुति करे निंदा न करे, गुरु से सदैव नीचे आसन पर बैठे श्रांत रहे चपलता न करे, आचार्य द्वारा डांटे जाने पर भी प्रसन्न रहे, कभी क्रोध न करे, जब भी गुरु कुछ पूछे तो हाथ जोड़कर विनम्रता से उत्तर दे, घमंड से ना बोले, जब वह शिक्षा दे तो ध्यान से सुने उसे मजाक में न उड़ाए, शरीर और वस्त्रों को शुद्ध रखे, जो कुछ भी प्रतिज्ञा करे उसको पूर्ण करे, इन्द्रियों को जीतनेवाला हो, चंचल व्यवहार न करे, उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ रहे, जिस-जिस कर्म से विद्या की प्राप्ति हो उस कर्म को करता जाए, जिन बुरे कामों से काम, क्रोध तोष, मोह, भय और शोक आदि विद्या के विरोधी अतनुण उत्पन्न हो उन कामों को छोड़कर सदैव ही उत्तम गुणों की कामना करे।

दयानन्द के अनुसार विद्या द्वारा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर, यथा योग्य व्यवहार करने-कराने से आप और दूसरों को आनंद युक्त करना विद्या का फल है क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चल सुख नहीं हो सकता।**

उत्तम गुणों की प्रशंसा करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि मनुष्य के उत्तम गुण उसके बुरे काम और दुस्वों को नष्ट करके सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्मों और सब सुखों को प्राप्त करवाने वाले होते हैं और इन्हीं के द्वारा मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी बन सकते हैं।**

आचार्य किस प्रकार से विद्या और सुशिक्षा को विद्यार्थियों को ब्रह्मण करवाए इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि आचार्य समाहित हो कर इस प्रकार शिक्षा ब्रह्मण करवाए जिससे विद्यार्थी की आत्मा के भीतर अर्थ सुनिश्चित हो जाए और उसका उन्माद बढ़ता जाए, वह ऐसी वेष्टा और कर्म कभी न करे जिसको करके या देखकर विद्यार्थी अधर्म युक्त हो जाए।**

श्री अरविन्द के शब्दोंमें, “आवश्यक बात यह है कि उन्होंने (स्वामी दयानन्द ने) वेद को युगों से चले आने वाले भारत की वृष्टन समझा तथा उनमें यह साहसपूर्ण कल्पना थी कि वे उसी वेद पर अपने सुधार का निर्माण करें जिस वेद में उनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने एक समूची राष्ट्रीयता के दर्शन किये थे।”** तत्पश्चात् श्रेष्ठ बुद्धि धारण करने वाले पंडित के तक्ष्ण बताते हुए दयानन्द कहते हैं कि- जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करते, किसी पदार्थ के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर शोक करने की अभिलाषा नहीं करते और बड़े- बड़े दुस्वों से युक्त व्यवहार की प्राप्ति में भी मूढ़ होकर घबराते नहीं वह मनुष्य पंडितों की बुद्धि से युक्त होते हैं।**

मानवीय व्यवहार से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक बात को दयानन्द ने विदुर नीति से उदाहरण लेते हुए कहा है

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता मूढचेता नयथमः॥

अर्थात् जो बिना बुलाए जहां-तहां सभा आदि स्थानों में प्रवेश करके सत्कार और उच्च आसन को चाहे अथवा ऐसी रीति से बैठे कि उसका आवरण अप्रिय विदित हो, बिना पूछे ही इधर-उधर की व्यर्थ बातें करे, बिना जान-पहचान वालों में विश्वासी होकर अपने सुख की हानि कर ले वही मनुष्य मूढ़ बुद्धि और मनुष्यों में नीच कहलाता है।⁷

इसके अतिरिक्त जीवन में सफलता हेतु परिश्रम का महत्व दर्शाते हुए दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि कर्म ही मनोरथ पूर्ति का उतम साधन है इसके विपरीत जो पदार्थों की प्राप्ति में उत्साहित दिखाता है उस मनुष्य को विद्वान लोग मूर्ख कहते हैं। मूर्ख के लक्षण बताते हुए उन्होंने लिखा है कि-

जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान का उपदेश न सुन बड़ा घमंडी, दरिद्र होकर धन संबंधी बड़े-बड़े कामों की इच्छा वाला और बिना कुछ किए ही बड़े-बड़े फलों की इच्छा करने वाला होता है वह मूर्ख है।⁸ इस प्रकार बिना परिश्रम किए ही फल की प्राप्ति की इच्छा करने वाले को दयानन्द ने मूर्ख की उपाधि दी है। सभा आदि में जाने पर मनुष्य का व्यवहार कैसा होना चाहिए इस पर टिप्पणी करते हुए दयानन्द कहते हैं कि जब सभा में जाएं तो दृढ़ निश्चय करके कि मैं सत्य को जीत लूंगा और असत्य को हरा दूंगा। अभिमान न रखें, अपने आप को बड़ा न मानें। आपकी बात का कोई खंडन करे तो उस पर क्रोधित या अप्रसन्न न हो, जो कोई कहे उसके वचन बहुत ध्यान देकर सुन कर उसमें कुछ असत्यमान हो तो उस अंश का खंडन अवश्य करें और जो सत्य हो तो प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करें।⁹

न केवल दैनिक व्यवहार अपितु मित्रों, पड़ोसियों एवं स्वामी सेवक के साथ कैसा व्यवहार करें इसके बारे में बात करते हुए वह लिखते हैं कि पड़ोसियों के साथ ऐसा बर्ताव करें जैसा अपने शरीर के लिए करते हैं। मित्र आदि के लिए भी ऐसे ही कर्म करें। स्वामी सेवक के साथ ऐसा बर्ताव करें जैसा अपने हाथ-पैर आदि अंगों की रक्षा के लिए करता है और सेवक स्वामियों के लिए ऐसे बरतें जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिए होते हैं।¹⁰

विवाह के पश्चात् पुरुष और स्त्री एक-दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करें इस पर बात करते हुए कहा गया है कि वह एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हो, एक दूसरे की सेवा करें। पति भोजन, वस्त्र, आभूषण एवं प्रियवचन आदि व्यवहारों से स्त्री को सदा प्रसन्न रखें और घर के सब कृत्य उसके अधीन करें। स्त्री भी अपने पति से प्रसन्न वदन, खानपान, प्रेमभाव आदि से उसको सदा हर्षित रखो परस्पर प्रीति के बिना न गृहस्थाश्रम का किंचित सुख, न उतम संतान, न प्रतिपत्ता और न लक्ष्मी आदि श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति होती है।¹¹

सब कुछ जान कर भी बुरे कर्म करने वाले मनुष्य की तुलना दयानन्द ने चोर के साथ की है। वह कहते हैं विद्या का यही

फल है कि जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर भी न किया और बुरा जानकर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है क्योंकि चोर भी चोरी को बुरा जानता हुआ भी करता है।¹²

सत्पुरुष का लक्षण बताते हुए दयानन्द कहते हैं कि जैसा आत्मा का ज्ञान वैसा वचन, जैसा वचन वैसा कर्म करना सत्पुरुषों का लक्षण है और जिसके आत्मा और वचन से विरुद्ध कर्म है वह असत्पुरुष है।¹³ दयानन्द के अनुसार जितने भी मनुष्य से भिन्न प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव है- बतलान से डरना, निर्बल को डराना और पीड़ा देखकर दूसरे के प्राण निकालकर अपना मतलब सिद्ध कर लेना और जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उसको भी इन्होंने जातियों में गिनना उचित है मनुष्य योनि में नहीं।¹⁴ इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने व्यावहारिकता के धरातल पर शिक्षा को सार्थक स्वरूप देने का प्रयास किया था जो विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं को विकसित कर सके।

निष्कर्षतः

परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। अतः मनुष्य को जीवन में प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब शिक्षा के माध्यम से ब्रह्मण किए विचारों एवं सिद्धांतों को व्यवहारपरक दृष्टि से आत्मसात् किया जाए। स्वामी दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों पक्षों को समाहित करने का प्रयास किया। उनके मत में व्यक्ति, समाज और राज्य की उन्नति तथा सुख समृद्धि उसी दशा में संभव है जब सब स्त्री पुरुष सुशिक्षित हो सबको धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य का समुचित ज्ञान हो और विद्या तथा विज्ञान को सबके हित कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाए। मानव समाज के हित, कल्याण तथा उन्नति के लिए जो भी विचार महर्षि ने प्रस्तुत किए हैं उन सब को क्रियात्मक रूप देने के लिए उन्होंने उतम शिक्षा का ही आश्रय लिया।¹⁵

अन्तरिप्पणी

1. प्राचीन भारत में तौकिक शिक्षा, पृष्ठ-424
2. वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, पृष्ठ-2
3. वही, पृष्ठ-15
4. व्यवहारभानु, भूमिका
5. आर्यसमाज का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ-671
6. व्यवहारभानु, पृष्ठ-1
7. वही, पृष्ठ 7
8. व्यवहारभानु, पृष्ठ-8
9. रासकीय हिंदी निरुक्त, प्रथम अध्याय, द्वितीयपाद, पृष्ठ-35
10. व्यवहारभानु, पृष्ठ-6
11. वही, पृष्ठ-8
12. वही, पृष्ठ -13

- 13.वही, पृष्ठ -7
- 14.वही, पृष्ठ -13
- 15.आर्यसमाज का इतिहास, पृष्ठ-177
- 16.,व्यवहारभानु, पृष्ठ-2-4
17. विदुरनीति विदुरप्रजागर, 1/38, पृष्ठ-22
18. व्यवहारभानु, पृष्ठ-03
- 19.वही, पृष्ठ-17
- 20.वही, पृष्ठ-21
- 21.वही, पृष्ठ-29
- 22.वही, पृष्ठ-27
- 23.वही, पृष्ठ-25
- 24.वही, पृष्ठ-30
- 25.आर्यसमाज का इतिहास, पृष्ठ-482

सन्दर्भग्रन्थसूची

- विद्यालंकार, सत्यकेतु एवं वेदालंकार हरिदत्त ; 'आर्य समाज का इतिहास', प्रथम भाग, आर्य स्वाध्याय केंद्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
- कालरा, सरला; 'प्राचीन भारत में लौकिक शिक्षा', साक्षर भारत, जयपुर, 2013
डा. नागेन्द्र (डॉ.); 'वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति' वैकटेश प्रकाशन, नईदिल्ली
दयानन्द सरस्वती स्वामी: 'व्यवहारभानु', वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, सं. 1957
- शास्त्री, कपिल देव एवं पांडे, श्रीकांत (समीक्षक); 'यास्कीय हिंदी निरुक्त', साहित्य भंडार, मेरठ, 1999
जगदीश्वरानंद सरस्वती स्वामी (अनुवादक); 'विदुरनीति विदुरप्रजागर', विजयकुमार गोविन्दरामहसनन्द प्रकाशन, दिल्ली, 2016

भारतीय संस्कृतिनिष्ठ मानवमूल्य: कल आज और कल

डॉ. नीता शुक्ला¹⁵⁶

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्था' अतएव संस्कृतं संस्कृतेष्वैव क्षेत्रे समुपास्यताम्
भारतीय संस्कृति सनातन मूल्यों का आश्रय है और भारतीय संस्कृति का आश्रय है संस्कृता संस्कृत भाषा न केवल भारतीय भाषाओं की जननी है बल्कि समस्त भाषाओं को जीवन प्रदान करती है। भारतवर्ष के संविधान में अपनाये गये 'सर्वभाषा उन्नति के सिद्धान्त का मूल स्वर ऋग्वेद में मिलता है।(1)

मूल्य शब्द अंग्रेजी के 'वैल्यू' शब्द के हिन्दी रूपान्तर के रूप में प्रचलित है। मूल्य शब्द से निष्पन्न मूल्य शब्द की गणना मानव की मूल प्रवृत्तियों व भावनाओं के आधार पर की जाती है जो प्रवृत्तियां व भावनाएँ उसकी आवश्यकताएँ हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सन्तुष्टि के कारण मूल्यों का इनसे सम्बन्ध होना सदा स्वभाविक है। प्रारम्भ में मूल्य व्यक्ति की आवश्यकताओं को परिलक्षित करते हैं और कालान्तर में समाज के आदर्श बन जाते हैं और तत्पश्चात् सामाजिक मान्यता प्राप्त कर वे आदर्श ही सनातन मूल्य बन जाते हैं।

भारतीय संस्कृतिनिष्ठ मानव-मूल्य हमें जीवन जीने की उस शैली से अवगत कराते हैं जिससे हमारा जीवन तो सुखमय होता ही है दुःखत्रय की आत्यन्तिक निवृत्ति भी हो जाती है। मानव मूल्यों के आदर्श उदाहरण न केवल वेद हैं अपितु रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ एवं धर्मशास्त्र सहित समस्त संस्कृत वाङ्मय मानव-मूल्यों का अनन्त भण्डार है। व्यक्ति के शताब्दियों के विन्तन, मनन व प्रयासों के फलस्वरूप स्थापित मानव-मूल्य किसी भी देश की संस्कृति का दर्पण हैं।

दर्शनशास्त्र की एक शाखा (2) में मूल्य की परिभाषा, स्वरूप, प्रकार व मूल्यों को व्यवस्थित करने वाले नियमों का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि 'मूल्य' की परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है तथापि कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं। 'मूल्य उस वस्तु या क्रिया की विशेषता है जो हमारे जीवन को सुरक्षित रखने व उसके विकास में सहायक है।'(3) 'आदर्श नियमों को विस्तृत दृष्टिकोण से देखने पर मूल्य तथा आदर्श नियम के बीच में पाये जाने वाले अन्तर स्वतः ही गायब हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि मूल्य व आदर्श नियमों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।(4) 'वे वस्तुएँ और क्रियाएँ मूल्यावन होती हैं जो हमारी आत्मा को पूर्ण बनाने में सहायक होती हैं।(5) मूल्य व्यक्ति के सामाजिक सुकाव और निर्देशन के तन्त्र हैं वे मानव समूहों और व्यक्तियों के द्वारा प्राकृतिक और सामाजिक संसार के साथ सामंजस्य करने के उपकरण हैं।(6) मनुष्य की रूचि व प्रवृत्ति मूल्यावन वस्तु में होती है और मूल्यावन वस्तु वह मानी जाती है जो हमारी इच्छाओं को संतुष्ट करती है।(7) मूल्यों के द्वारा सभी प्रकार की चीजों का मूल्यांकन किया जा सकता है चाहे वे भावनाएँ हो या विचार, क्रिया, गुण, वस्तु व्यक्ति, समूह, लक्ष्य या साधन। इसलिए यदि कोई व्यक्ति सत्य, अहिंसा, धर्म, त्याग आदि के सिद्धान्तों पर अटल रहता है तो लोग उसकी प्रशंसा से मुखरित हो उठते हैं क्योंकि उस व्यक्ति ने स्वीकृत मूल्यों को मान्यता दी है। कहा भी गया है-

क्षमानुकम्पाकारुण्यमान्तानामृशंस्य न विद्यते।

¹⁵⁶ एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय लखीमपुर खीरी उ प्र

क्षात्रमाचारतो मार्गमपि बन्धेस्त्वदन्तरे।

अर्थात् हृदय में करुणा क्षमा, अनुकम्पा तथा कोमलता का भाव होना चाहिए इन समस्त भावों का अनुसरण करने वाला ही मूल्यवान होता है। मानव मूल्य एक ऐसी आवरण संहिता या सद्गुण समूह है जिसे अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपना कर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन-पद्धति का निर्माण करता है व अपने व्यक्तिगत का विकास करता है तथा 'जिन मान्यताओं के आधार पर हम अपने को व अपने समाज को न केवल धारण और व्यवस्थित कर पाते हैं बल्कि दोनों में निहित लोक मांगलिक सम्भावनाओं को चरितार्थ भी करते हैं मानव मूल्य कहलाते हैं।

इस प्रकार मानव मूल्य वे मानवीय मान लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण समझते हैं।

मानव मूल्यों का एक सामाजिक व सांस्कृतिक, आधार होता है इसलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें भिन्नता मिलती है। कुछ परम्परागत, सार्वभौम व सार्वकालिक मानव-मूल्य इस प्रकार हैं। भारतीय दर्शन के तीन मूल्यों(8) में से सत्य से नैतिक उत्थान होता है शिवम् जन कल्याण के लिए होता है तथा सुन्दरम् आवरण की सुन्दरता हेतु प्रेरित करता है।

किन्हीं दार्शनिक, विचारक व चिन्तक ने (9) सत्य अच्छाई और सुन्दरता की व्याख्या मानव मूल्यों के रूप में की है तो किसी ने(10) विवेक, साहस, संयम और ये चार मानव मूल्य दिये हैं।

कल के सन्दर्भ में अर्थात् यदि अतीत में मानव मूल्यों की बात करें तो भारत में वैदिक काल से ही मूल्यों का अत्यन्त महत्व रहा है। पुरुषार्थ चतुष्टय (11) इनमें प्रमुख है। इसके अतिरिक्त वर्ण नैतिक मूल्य अर्थात् चारों वर्णों (12) का कर्तव्य निर्धारण मूल्य ही है। मानव जीवन के चार आश्रमों (13) के अनुसार आश्रम नैतिक मूल्य निर्धारित किये गये हैं। औपनिषदिक मूल्यों में साधना योग, तप, शिक्षा, समर्पण, आज्ञापालन व मोक्ष आदि को तथा श्रीमद्भगवद्गीता के प्रतिहार, सेवा, त्याग, भक्ति, ज्ञान व कर्म (निष्काम) आदि को मानव मूल्यों के रूप में मान्यता प्राप्त है। सांख्य में प्रकृति-पुरुष (14) का सम्यक् ज्ञान मानव मूल्य है तो योग के यम-नियम (15) आदि न्याय के अनुसार तर्क, वाद, निर्णय तथा निग्रह-स्थान मूल्य है तो मीमांसा के धर्म, कर्म, यज्ञादि। फ्रांस की क्रान्त के तीन चरित्रमण्णीय नारे मानवीय मूल्यों के रूप में विश्व स्तर पर स्थापित हैं (16) तथा राजनैतिक सन्दर्भ में समानता, स्वतन्त्रता, न्याय, सेवा, ईमानदारी, अनुशासन एवं शोषण के विरुद्ध मान्यता ये मानवीय मूल्य हैं। किसी के अनुसार (17) सत्य, अहिंसा, प्रेम ये तीन मानव मूल्य हैं तो किसी ने(18) श्रमदान को मानव मूल्यों में गहराई से जोड़कर श्रमदान, शिक्षादान व सम्पत्ति दान ये तीन मूल्य दिये।

जैन धर्म में मानव मूल्यों के रूप में त्रिरत्न(19) व पंचमहाव्रतों(20) के पालन की अपेक्षा की गई है तथा बौद्ध धर्म में अष्टांगिक मार्ग(21) का उल्लेख मानव मूल्यों के रूप में किया गया है।

इन समस्त मूल्यों को 'श्रेयस्' व 'प्रेयस्' दो भागों में बाँटा गया है(22) बुद्धिमान् व्यक्ति श्रेयस् का वरण करता है और जबकि सामान्य व्यक्ति प्रेयस् का। डा० आर०सी० तत्वानिया ने छः जीवन मूल्य बतलाये हैं:- (23) वैयक्तिक, समष्टिगत, आध्यात्मिक, भौतिक, नैतिक तथा सौन्दर्यमूलक एक पाश्चात्य विद्वान अर्बन के अनुसार मूल्य अधोलिखित हैं-

शारीरिक- शरीर की जरूरत पूर्ण करने वाले जैसे - भोजन वस्त्र आदि आर्थिक-आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले जैसे धन-दौलत, लेन-देन, व्यापार आदि मनोरंजनात्मक जैसे खेल, सिनेमा, नाटक, नौटंकी आदि साहचर्यात्मक - पारस्परिक सद्भाव की वृद्धि करने वाले जैसे - मैत्री सौन्दर्यात्मक - सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाले वास्तविक-चरित्र निर्माण करने वाले तत्व जैसे-ईमानदारी, दया, क्षमा, न्याय आदि

बौद्धिक- बुद्धि का विस्तार करने वाले जैसे-ज्ञान, तर्क आदि। आध्यात्मिक जैसे आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म, चेतना, भक्ति, सन्तुष्टि आदि।

सामाजिक - जिनमें समाज की उन्नति व प्रगति निहित हो जैसे - विश्वबन्धुत्व, सौदाद आदि।(24)

एक अन्य विद्वान ने छः प्रकार के आधार भूत मूल्यों का वर्णन किया है-

- | | |
|-------------------------|------------------------------|
| 1. शैक्षणिक या बौद्धिक | 4. सामाजिक या पारस्यवादी |
| 2. आर्थिक या व्यावहारिक | 5. राजीतिक या सत्ता सम्बन्धी |
| 3. सौन्दर्यबोधी | 6. धार्मिक या रहस्यात्मक |

इस प्रकार विश्व की वे सभी वस्तुएँ जिनकी एक व्यक्ति इच्छा करता है वे मानवीय मूल्य माने जाते हैं। उपर्युक्त सभी मूल्यों को दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं:-

1. जैविक मूल्य- जीवन की सुरक्षा में सहायक इसके अन्तर्गत शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजनात्मक मूल्यों को रख सकते हैं।
2. अतिजैविक मूल्य- ये मूल्य देह से परे होते हैं इसके अन्तर्गत सामाजिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक व सौन्दर्यात्मक मूल्यों को रखा जा सकता है। इन समस्त मूल्यों को एक अन्य प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. साधन मूल्य- अन्य मूल्यवान उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।
2. साध्य मूल्य- अपने आप में मूल्यवान तथा साध्य मूल्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं।

वास्तव में मानव मूल्य तीन बातों पर निर्भर हैं:-

1. जो व्यक्ति-विशेष की मान्यता है वह मूल्य है।
2. जैसा वह व्यवहार करता है वह व्यवहार व्यावहारिक मूल्यों को प्रकट करता है।
3. जो हम जीवन के घात-प्रतिघात से अनुभव द्वारा सीखते हैं और अपने मूल्यों का पुनर्निर्माण करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन और नवीन दोनों में जो ग्राह्य है उसका समन्वय करके ही वांछित मूल्यों का निर्माण होता है इसीलिए वैदिक काल से चले आ रहे मानव मूल्य कल भी महत्वपूर्ण थे और आज भी महत्वपूर्ण हैं और हमेशा रहेंगे।

मनुष्य और पशु में मूल अन्तर यही है कि एक पशु अपनी इच्छाओं से नियंत्रित है और मनुष्य मस्तिष्क से। क्योंकि मनुष्य सोच सकता है और उसने अपनी चिन्तन शक्ति से ही समय-समय पर मूल्यों का निर्माण व विकास किया है। प्राचीन काल में मानव मूल्यों से युक्त व्यक्ति महामानव समझा जाता था। संसार में एक मात्र मनुष्य ही मस्तिष्क, हृदय और भावना से

युक्त प्राणी है। मनुष्य के जीवन में शारीरिक बल की तुलना में मानसिक बल अधिक महत्व रखता है। (25) मानव मूल्य पढ़ाए नहीं जाते अधिबढ़ीत किये जाते हैं आज के बच्चे कल का भविष्य हैं अतः आवश्यकता है कि नई पीढ़ी में बचपन से ही नैतिक मूल्यों के सुदृढ़ीकरण नींव की डाली जाय ताकि जीवन की परिस्थितियों कैसी भी हो वह उनसे जूझते हुए भी उन मूल्यों को खुद में संजोये रखे।

आज विडम्बना यह है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था केवल बौद्धिक विकास पर बल देती है बोध जाग्रत नहीं करती। ऐसी जिज्ञासा नहीं जगती जो स्वयं सत्य को खोजने के लिए प्रेरित करे क्योंकि आज के बच्चे कल का भविष्य हैं।

श्रेष्ठकार्य हमें सदैव ऊर्जावान व बलवान बनाते हैं। सनातन जीवन मूल्यों से अन्तःकरण की तमाम दोषपूर्ण ब्रिथियां खुल जाती हैं अतः हम सब अपने जीवन को इनसे समन्वित करें क्योंकि मूल्य वे मानदण्ड हैं जो सम्पूर्ण संस्कृति और समाज को अभिप्राय व सार्थकता प्रदान करते हैं तथा चेतना व चित्त को उदारता से संभरित करते हुए तथियां को दूर करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विशाल फलक प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति के बिना मानवीय मूल्यों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कुछ मानव मूल्य ऐसे हैं जो विश्व के कोने-कोने में समान रूप से पाये जाते हैं जिनमें गिरावट आते ही सम्पूर्ण राष्ट्र का चरित्र विघटित होने लगता है तथा देश भ्रष्टाचार के दलदल में फँसता चला जाता है परन्तु ध्यातव्य है कि मानव मूल्यों का हास हुआ है नाश नहीं क्योंकि हमारी संस्कृति में भोग के साथ योग तथा कामना के साथ साधना भी विद्यमान है।

अन्तर्दिप्पणी

1. 'आ भारती भारतीभिः सजोषा'
2. मूल्य मीमांसा
3. जीव शास्त्र के अनुसार
4. जॉन्सन
5. नीतिशास्त्र के अनुसार
6. डॉ० आशुवेंद्र मुखर्जी
7. मनोविज्ञान के अनुसार
8. सत्यं शिवं सुन्दरम्
9. अरस्तू
10. प्लेटो
11. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
12. ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र
13. ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास
14. सांख्यकारिका
15. पातञ्जलयोग सूत्र
16. स्वतंत्रता, समानता भ्रातृत्व

17. महात्मां गांधी
18. विनोबा भावे
19. सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र
20. सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह
21. सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त,
सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि
22. कठोपनिषद्
23. हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य नामक शोध-पत्र में
24. रपैंगर
25. पायथागोरस

A light on *Ṣaṭkarma* according to *Haṭha Yogic* texts

Atanu Bandyopadhyay¹⁵⁷

Key words : *Yogashastra, Haṭha Yoga, Ṣaṭkarma, Prāṇāyāma, Mokṣa*

Abstract- ‘*Shat*’ represents numeric term six in *Sanskrit* and ‘*Karma*’ or ‘*Kriyā*’ means action or procedure. So ‘*Ṣaṭkarma*’ or ‘*ShatKriyā*’ means the combination of six types of procedures or actions, which are mainly practised for purification or cleansing of the body in *yoga*. Purification or cleansing is very important to maximise the benefits of *yoga* practice, which is meant to compel the soul towards a higher sense of consciousness. Most of the diseases occur in the human body due to the imbalance of *tri-dosha* i.e. *Vata, Pitta and Kapha*. *Ṣaṭkarma* maintained all the five elements i.e. air, fire, earth, water and space of our body and makes us physically fit and fine, which helps us to practice all the *Asanas, Prāṇāyāmas, Dharnas and Dhyānas*. This physical activity keeps us away from taking different kinds of medicines for disease. *Ṣaṭkarma* helps in attaining physical purification and also keep a balance between *Ida Nadi* or left nostril and *Pingala Nadi* or right nostril, which helps to open the gateway of *Kundalini Shakti – Sushumna Nadi*. *Mokṣa* or liberation is the ultimate aim of *Haṭha yoga* practice. Many health benefits of *Ṣaṭkarma* are indicated in the various traditional *Haṭha yogic* texts but there is not much comprehensive literature available related to scientific evidence on *Ṣaṭkarma*. *Haṭhābhyāsapaddhati, Hatha Ratnāvalī, Haṭha Yoga Pradīpikā, Śivasamhitā, Vasishtha Samhitā, Gheraṇḍasamhitā, Joga Pradīpikā, Śrītattvanidhi, Yogasopana Purvacatuska* etc are the most popular *Haṭha yogic* texts. Since *Haṭha yoga*-related texts are stub so there are not many *Ṣaṭkarma* related resources available. This research paper will discuss the *Ṣaṭkarma* according to these major *Haṭha yogic* texts.

Introduction – The *Ṣaṭkarmas* or *ShatKriyās* are a set of purification or cleansing techniques or *Kriyās* of the body in *Haṭha yoga* to prepare the body for the main work of *yoga*, which is leaning towards *Mokṣa* or liberation. *Svāmārāma* in his book the *Haṭha Yoga Pradīpikā* described six main purification techniques or *Kriyās* which are as – *Netī, Dhautī, Naulī, Basti, Kapālabhātī* and *Trāṭaka*. But *Srinivasa* in the 17th century criticised the *Haṭha Yoga Pradīpikā* for describing only six *Kriyās*. In his book the *Haṭha Ratnāvalī*, he mentioned two

additional purifications techniques or *Kriyās*, which are – *Cakri* and *Gajakarani*, so according to him, there are eight *Kriyās*. The *ShatKriyās* are described in the various *Haṭha yogic* texts for the purpose of purifying the gross impurities of the body to cure the different types of disease and to prepare the body for *Prāṇāyāma*. By doing *Prāṇāyāma* our vital energy *Prana* forces into the central *Sushumna* channel and allows *Kundalini* to rise and attain *Mokṣa* or liberation.

1. ***Dhautī Kriyā*** – In *Sanskrit* ‘*Dhautī*’ means washing or cleaning. In *Dhautī Kriyā* the purification or cleansing process is done with the whole intestine or the digestive tract, specifically the upper intestine. This is the first procedure described in *ShatKriyā*. It is a very highly beneficial type of *Kriyā* after *Naulī*. In *Dhautī Kriyā* practitioners try to vomit in order to clear the blockages in the intestine. This *Kriyā* is very beneficial for treating constipation, gastric troubles, bile disorders, loose stomach and enhancing renal functions. As per *Gheraṇḍasamhitā* there are four types of *Dhautī karma*, which are – *Antar Dhautī, Danta Dhautī, Hrid Dhautī* and *Moolshodhan*. *Antar Dhautī* is consist of *Vaatsaar, Vaarisaar* (Shankh Prakshalana), *Vahnisaar, Vahishkrit* and *Danta Dhautī* consist of *Dantmool, Jihvamool, Karnrandhra, Kapalandhra* and *HridDhautī* consist of *Dand, Vaman (Kunjal), Vastra*. According to *Haṭha Yoga Pradīpikā* *Vastra Dhautī* and *Gajakarni Dhautī* are also mentioned under *DhautīKriyā*.³

अन्तर्घोतिर्दन्तघोतिर्हृद्घोतिर्मूलशोधनम् ।

घोतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥ (ह० प्र० 13)

The most commonly known *Dhautī Kriyā* is *Vaman Dhautī* or *Kunjal Kriyā*. This *Kriyā* should be done in the early morning with an empty stomach to cleaning the mouth, food pipe and stomach. During this *Kriyā*, practitioners start drinking lukewarm saline water until they start vomiting. Before doing this *Kriyā*, practitioners need to cut their nails, cleans hands, keep the jug and the glass near to them and mix *Saindha namak* or rock salt into the lukewarm water. After the *kunjal Kriyā* one can eat khichadi with ghee but should not eat too chilly or spicy food. In *kunjal Kriyā*, one should sit in *Kagasana* and then starts drinking one glass by one glass of lukewarm saline water until they cannot

¹⁵⁷ Shri Shankaracharya Public School, Kharsia, C. G.

drink any more water and the feeling of vomiting started. One should start rubbing the root of the tongue with three fingers of the right hand after opening the mouth. In the beginning a small amount of water will come out during vomiting but after doing the same thing continuously the amount of water will increase vomiting. This *Kriyā* anyone can practice once a week. The *Kunjā Kriyā* is very useful for cleaning the acidity from the stomach, maintaining sound health, beneficial for asthma patients and it is also beneficial for removing the bad smell of the mouth and mucus of the throat. The *Kunjā Kriyā* is not suitable for those, who are suffering from stomach ulcers, cardiovascular diseases and hypertension.⁶

2. **Basti Kriyā** – This *Kriyā* is one kind of colonic irrigation or cleaning of the rectum. With an empty stomach and early in the morning is the best time to perform this *Kriyā*. Our abdomen has three parts – upper, middle and lower abdomen. *Basti Kriyā* is primarily practised to purify the pelvic zone and bladder in the lower abdomen. During ancient times yogis practise this *Kriyā* to cleanse of intestine through the anal route, which is called 'Enema'. To perform this, yogis stand under the water of a river or pond at the level of the belly and try to pull the water into the intestines through the anus and after that try to push the water from the anus again. This technique is called 'Yogic Enema'. Nowadays in this modern time, the practices of *Basti Kriyā* is modified as per the modern yoga practitioner's needs. Now instead of doing it in the river or pond, the 'Enema' apparatus is being used for convenience. This Enema apparatus is used to enter the lemon water or salt water inside the intestines. This lemon water clears the blockage inside the colon and clears the intestine, which is very helpful in constipation. This *ShatKriyā* is very beneficial for urinary disorders, digestive problems, treating irregular bowels etc. Regular practice of this *Kriyā* maintains the balance of healthy body functions.

3. **Netī Kriyā** – सूत्रं वितस्ति-सुस्निग्धं नासानाले परवेशयेत् |

मुखान्निर्गमयेच्छैष्णा नेतिः सिद्धेर्निगद्यते ||२१|| (Śaṭkarma')

The cleansing of the nasal tract and the nostrils are performed in *Netī Kriyās*. So basically this *Kriyā* denotes nasal wash. Purified water and non-iodized salt are used in basic *Netī Kriyās* to create a light saline solution. However water, thread, milk and ghee these four types of elements

anyone can choose from. *Netī Kriyā* is very helpful in relieving anxiety, depression and in releasing muscular tension from facial muscles and bring youthful glowing. It is also very beneficial in balancing the entire nervous system and improvements in eye sights. There are two types of *Netī Kriyā* – (a) *Jal Netī* & (b) *Sutra Netī*.⁴

- (a) **Jal Netī** – In the morning with empty stomach practitioners often sit in *Kagasana* and take non-iodized lukewarm water in the *Netī* pot to perform the *Jal Netī Kriyā*. While performing the *Jal Netī Kriyā* one need to put water from the *Netī* pot into the anyone of the nostril and keep the other side nostril little bit downwards. During the procedure the mouth should be open always to continue the breathing process via the mouth. The water coming out from the other nostril also wash away the phlegm or mucus along with the water. This procedure should be done with the other nostril also. After *Jal Netī* everyone must do the *Kapalbhati Kriyā* so if there is any water left inside the nostril, can come out and make the nostril fully opened. After this *Kriyā*, everyone can do *Shasankasan* few minutes for relaxation. Running nose, sinusitis, cough and many other nose related disease can be cured by performing this *Kriyā*.
- (b) **Sutra Netī** – A long thin strand of cotton generally used in *Sutra Netī Kriyā* to clean the nasal passage. Sometimes a rubber thread is also used instead of cotton since it is easily available in any medical shop. During this *Sutra Netī*, the rubber or cotton thread is inserted into the nasal passage and pulled out from the mouth. After that, both ends are held with the hands and the cleansing process is done by pulling the thread to and fro motion by hand. This *Kriyā* is also very beneficial for different types of nasal problems.⁵
4. **Trāṭaka Kriyā** – This *Kriyā* is eyes exercises, where practitioners need to gazing at a fixed point such as a black spot or a candle flame intently with blinkless until tears are shed. It is a very powerful *Sādhanā*, which enhance the power of the mind or concentration. This specific technique is very helpful for good eyesight, developed focus and enhanced physical and mental dedication. There are two types of *Trāṭaka Kriyās* one is *Jatra* and another is *Jyoti*. While performing this *Kriyā*, secretion of tears from the tear gland can happen, which will purify the visual system. During performing this *Kriyā* one needs to light a candle or ghee lamp, 4 feet away in front of the eye level and the lamp should be placed in a wind free zone. Sitting in *Sukhasana* or *Padmasana*

keeping whole body straight and calm and the eyes gazing at the light without any blinking. Gazing should be continued until the tears come out from the tears gland and when the eyes get tired by shedding tears at that time eyes should be closed. This procedure can be done again and again and extended up to 20 minutes to get regular good benefits. This procedure also can be done by drawing the 'Aum' symbol on the paper or wall.

5. **Naulī Kriyā** – This *Kriyā* is purify the abdomen and its internal organs and it is very essential for simulating the digestive system. In this yogic practice, the abdominal muscles are rotated internally and alternately in a clockwise then in an anti-clockwise direction. During performing this yogic technique the performers need to stand up two feet gap between the two legs and place two hands on the knees and lean 45 degrees forward. To prepare the abdominal muscles in the *Uddiyan Bandha* stage one need to exhale completely and emerge out at the centre of the abdomen. The abdominal muscles will look like tube-shaped. Now, this tube-shaped abdominal muscles need to rotate from right to left and left to right. While performing this *Kriyā* the emerged abdominal muscles placing to the centre of the abdomen called '*Madhya Naulī*' and placing at the right side called '*Dakhsin Naulī*' and placing it at the left side called as '*Vama Naulī*'. This *Kriyā* should be practised with an empty stomach and early in the morning. This yogic *Kriyā* is very beneficial for abdominal organs, constipation and enhancing digestive system. But those who are suffering from hernia, ulcer, chronic renal and cardiovascular disease should not practice this *Kriyā* for the safety issue.
6. **Kapālabhāti Kriyā** – In Sanskrit Kapālabhāti word consist of two words i.e. '*Kapala*' means the brain or skull and '*Bhati*' means to shine or glow or luminosity, so Kapālabhāti *Kriyā* is for cleans and shines the brain. In this *Kriyā* the performers stimulate the brain cells to purify the brain and polish the mind. This breathing technique removed all the blockages from the tracts and purify the entire respiratory system. This breathing technique energised and balanced the nadis and chakras. During performing this *Kriyā* one need to sit with a straight spine in *Padmasana* or *Sukhasana* and keep both hands on the knees. Inhalation and exhalation are done in *Kapālabhāti* but holding the breath are not done in this *Kriyā*. Inhalation can be done normal way but exhalation can be done rapidly in *Kapālabhāti*. So rapidly exhalation of the balanced the main characteristics of *Kapālabhāti Kriyā*. This *Kriyā* should be done on empty

stomach and 20 to 25 times a day can be done, which will gradually increase the time of practice. Regular practise of this *Kriyā* can increase the oxygen level in the body, purify the lungs and can keep the mind peaceful. It is also very beneficial for reducing weight and purification of all the systems of the body. However, this *Kriyā* is not suitable for high blood pressure and heart patients.⁷

** Apart from these six karmas *Srinivasa* yogi in his *Haṭha Ratnāvalī* described two additional purifications techniques or *Kriyās*, which are as *Cakri* and *Gajakarani* and he also criticised *Svāmārāma* for only mentioning the six *Kriyās* in his *Haṭha Yoga Pradīpikā*.

7. **Cakri Kriyā** – *Srinivasa* yogi described that *Cakri Kriyā* performed by making wider or more open of the anus. For doing this the yoga practitioners need to use their finger into the rectum to make it enlarge. This way the purification process of rectum can be done by this *Kriyā*. *Cakri-karma* is beneficial for removing piles, cure of spleen related disease, effective in abdominal disorder, cleansing of morbidities and perineal region and can be helpful in stimulating gastric fire.
8. **Gajakarani Kriyā** – In *Haṭha Ratnāvalī Srinivasa* elaborated about *Gajakarani Kriyā*. Though this *Kriyā* is also present in *Svāmārāma Hath Yoga Pradīpikā* but narrated differently. During this *Kriyā*, the practitioner holds the water and the breath in the part of the alimentary canal that connects the throat to the stomach and remove the blockage contents. *Gajakarani Kriyā* is very helpful for the purification of the whole canal from throat to stomach. This *Kriyā* is also very helpful in curing digestion related problems.

Some of the most important *Haṭha Yogic* texts related to *Ṣaṭkarma* –

(a) *Haṭha Yoga Pradīpikā* –

धौतिर्बिस्तिस्तथा नेतिः त्राटकं नीलिकं तथा ।

कपालभातिश्चेतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ (ह०प्र० 2/22)

This classic book is written or composed by *Svāmārāma* in the fifteenth century. *Svāmārāma* was connected with the teaching's lineage to *Matsyendranath* of the *Nathas*. The three most influential surviving texts on *Haṭha* yoga are *Gheraṇḍasamhitā*, *Śivasamhitā* and *Haṭha Yoga Pradīpikā*. From ancient times different manuscripts described different titles for the text, i.e.

Hathayogapradīpikā, *Hathpradīpikā*, *Hathapradī* etc. But during the 15th century, *Svātmārāma* composed the earlier Sanskrit concept in his book. He described his system as a preliminary step for physical purification for higher steps like Raja Yoga or meditation. The *Haṭha Yoga Pradīpikā* is consists of 389 shlokas or verses divided by four chapters that describe *Ṣaṭkarma* (Purification) *Asana* (Posture), *Prāṇāyāma* (Breath Control), *Chakra* (Spiritual points in the body), *Kundalini* (Coiled power), *Bandha* (Force postures), *Shakti* (Energy), *Nadi* (Subtle body channels), and *Mudra* (Symbolic gestures). This book also mentioned the previous thirty-five *Siddhas* like *Adi Nath*, *Matsyendranath* and *Goraksanath* etc. Out of these four chapters, the first chapter is dedicated to the arrangement of the proper environment for yoga, ethical duties of a yoga practitioner and the *asanas*, the second chapter is related to the *Prāṇāyāma* and the *Ṣaṭkarmas*. The third chapter described the *Mudras* and their benefits and the fourth is related to spiritual parts like meditation and *Samādhi*. This book is dedicated to *Lord Śiva* or *Adi Nath*, who is the god of destruction and creation. So this is more of a Hindu yoga book rather than a *Buddhist* or *Jain* and explained how *Haṭha yoga* leads to *Mokṣa* or liberation²

(b) *Haṭha Ratnāvalī* – *Srinivasa* yogi's the *Haṭha Ratnāvalī* written in the 17th century and this book first mentioned the name of each 84 *asanas* and described elaborately about 36 *asanas*. However, earlier *Haṭha* yogic texts also claimed about many *asanas* but they failed to name each *asana*. This book described different kinds of *asanas*, breath retentions techniques and seals assist in *Haṭha* yoga texts. *Srinivasa* described eight *Ṣaṭkarma* or *ShatKriyās* instead of six and criticised *Haṭha Yoga Pradīpikā* for mentioning only six. *Srinivasa* yogi also mentioned some of the rarely practised *asanas* like *Bhairavasana*, *Mayurasana*, *Gomukhasana*, *Matyendrasana*, *Kurmasana*, *Kraunchana*, *Yoganīdrasana* etc. This book also explained, highest form of achievement of *Haṭha* yoga practise is to attain *Mokṣa* or liberation.¹

(c) *Haṭhābhyāsapaddhati* – The *Haṭhābhyāsapaddhati* is written during the 18th century in Sanskrit as a manual on the practice of *Haṭha* yoga. This is the only known *Haṭha* yoga-related text before modern yoga, which elaborately describes different types of sequences or *asanas* and some of the rarely practised rope poses. This book is written by *Kapala Kurantaka*, who is one of the most important authors related to yoga before the British raj. His manuscript was highly inspired by the physical culture of that period in India. In his book, he

mentioned the *Gajasana*, which requires great ability and strength to perform. This is the only surviving *Haṭha* yogic text, which described different dynamics of ten different rope poses.

(d) *Gheraṇḍasamhitā* -

धौतिर्वस्त्रिस्तथा नेतिलौलिकी त्रोटकं तथा ।

कपालभातिश्चेतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥ (वे.स. 1/12)

This book is a teaching manual based on a dialogue between *Gheranda* and *Chanda* written in the 17th century and consists of seven chapters and 351 shlokas. It is one of the most important encyclopedic treatises on *Haṭha* yoga among the three classical texts of *Haṭha* yoga, the other two are *Haṭha Yoga Pradīpikā* and *Śivasamhitā*. Fourteen manuscripts were discovered in different parts of India from Bengal to Rajasthan. This book mainly focused on *Ghatashta* yoga or *ShatKriyās*, different kinds of cleansing techniques of internal organs. The *Gheraṇḍasamhitā* is a teaching manual of 32 *asanas* and 25 *mudras*. This book speaks about sevenfold or chapters, which are *Ṣaṭkarma*, *Asana*, *Mudra*, *Pratyāhāra*, *Prāṇāyāma*, *Dhyāna* and *Samādhi* but in contrast, the yoga sutras of *Patanjali* described an eightfold path, where *Yama* and *Niyama* were described instead of *Ṣaṭkarma* and *Mudra*. The goal of this sevenfold lifelong practice is self-purification, building body strength, proper nutrition, meditation and *Samādhi*. This *Haṭha* yogic text is highly inspired by *Advaita Vedānta* and mentioned about Hindu god *Śiva* as well as *Vishnu* in various verses.

(e) *Śivasamhitā* – The original writer of this text is still unknown but this text is addressed by *Lord Śiva* to his partner *Parvati*, that's why it is called *Śivasamhitā*. This text is consist of five chapters inspired by *Advaita Vedānta* philosophy and discusses the importance of yoga gurus in pupils' life and the power of *asanas*, *mudras* and *siddhis*. This text is one of the most comprehensive treatises on *Haṭha* yoga, apart from the other two major surviving classical texts i.e *Gheraṇḍasamhitā* and *Haṭha Yoga Pradīpikā*. There are many editions of this manuscript that can be found but one of the most known critical editions are from *Kaivalya Dham* Yoga Research Institute, published in 1999. Based on various resources scholars believed that this text was composed in and around Varanasi between 1300 CE to 1500 CE. *Śivasamhitā* is a yoga-related text and five chapters of it refer to *Tantra* also.

The first chapter stated that yoga is the highest path to achieving self-liberation or *Mokṣa*. The second chapter described how the outside observable world is equivalent to the internal form of *Nadis*, Fire, *Jiva*, and others. The third chapter is stated the various stages of yoga practice and the theory of *asanas* and the importance of yoga gurus. The fourth chapter is dedicated to mudras and how practising mudras can lead to *Siddhis*, which awaken the inner dormant energy or *Kundalini*. The fifth chapter is the largest, it described the *Chakras* and *Mantras* and self-liberation. The *Śivasamhitā* stated that a householder can get benefits from it by doing yoga every day. Total 84 *asanas* are mentioned in this text but only four *asanas* are described in detail.

- (f) ***Khecarīvidyā*** – Approximately 14th century CE the *Khecarīvidyā* of *Adi Nath* was one of the early Tantric texts on *Haṭha* yoga composed. It is the most important source for yogic Seals or *Mudras*. This text is a dialogue between Lord *Śiva* and his partner *Parvati*. The text is based on *Khecari's* mantra in the Kaula tradition belong to Tantric Shaivism. It is consist of three sections, described on *Khecari* mudra and it praises the use of mudra. Another one of the edited sections added to suitable *Haṭha* yoga readership. In this yoga practice body stores *Amrita* to raise *Kundalini* via the six chakras. It is one of the most important yogic practices of *Haṭha* yoga.
- (g) ***Amṛtasiddhi*** – *Amṛtasiddhi* is the earliest Buddhist text on *Haṭha* yoga and was written in Sanskrit and Tibetan languages around the 11th century CE. The text described the yogic body functions. The *Bindu* controlled the breath and mind identified with *Sad Śiva*, the moon. The text also described the use of *Mahamudra* to control body, speech, mind and prevent death. The text explained the idea of Sun, moon and fire inside the body. The moon is in the head, exuding *Amrita* and the Sun or fire is in the belly, depreciating *Amrita*, heading to death. Here the *Bindu* described two types, the male is *Bija* and the female is *Rajas*. The text also stated the yogic practices of *Mahamudra*, *Mahabandha* and *Mahavedha* to control the breath and rise the *Sushumna*.
- (h) ***Goraksha Śataka*** – The *Goraksha Śataka* is a Tantric tradition *Haṭha* yogic text written in the 10th century CE. The text described six limbs namely *Asana*, *Pranasamrodha*, *Pratyāhāra*, *Dhāraṇā*, *Dhyāna* and *Samādhi*. It describes how

the gradual increase of *Prāṇāyāma* leads to *Samādhi*. It is the first *Haṭha* yogic text in *Tantra* tradition that teaches four mudras i.e. *Mula Bandha*, *Uddhiyana Bandha*, *Jalandhar Bandha* and *Shakti*. Out of three force breath to the *Sushumna* and the fourth one is used to energise *Kundalini*. The text stated that controlling the mind and breath in *Prāṇāyāma* can lead to *Mokṣa*. The text also described three Chakras, *Brahma* at the root of the *Sushumna* channel, *Vishnu* at the centre of the same and *Rudra* middle of the eyebrows.

- (i) ***Śrītatvanidhi*** – The *Śrītatvanidhi* is written around the 19th century in Karnataka on 122 *Haṭha* yogic postures. The text first attributed authorship of the work to the Maharaja of Mysore, *Krishnaraja Wodeyar* iii. The Maharaja put interest on all the works available concerning the iconography and iconometry of the divine figure in south India. He asked to illustrate all illuminated manuscripts which he mentioned in *Śrītatvanidhi* together forms of *Śiva*, *Vishnu*, *Skanda*, *Ganesha* and other different goddesses. This work is divided into nine sections i.e. *Shakti*, *Vishnu*, *Śiva*, *Brahma*, *Graha*, *Vaishnava*, *Shaiva*, *Agama* and *Kautuka*. The texts sole purpose is to make the body firm enough for the *Śaṭkarma* practice.
- (j) ***Yogasopana Purvacatuska*** – The *yogasopana Purvacatuska* is a Marathi language *Haṭha* yogic text written in 1905 CE by yogi *Narayana Ghamande*. It is the first printed book illustrated with the halftone plates and described 37 *asanas* including *Matsyendra* and *Sarvanga* asana. This text broke the *Haṭha* yogic rules of secrecy, which is not showing the subtle body, instead of it engraving the three-dimensional physical postures. So that's why the text is one of the most important treatises in *Haṭha* yoga.⁸

Conclusion – This paper outlined an investigation of the *Śaṭkarma* according to *Haṭha* yogic texts. *Śaṭkarma* or *ShatKriyā* cleanses our body and prepares for *Haṭha* yogic practice towards liberation or *Mokṣa*. Different types of *Haṭha* yogic texts elaborated various kinds of procedures and techniques of controlling body, mind and soul. Most of the original texts are not available nowadays and some of them are newly composed by a different author and also some texts are paraphrased in different languages, however, the actual content of these texts is unchanged or modified by some of the authors. Some of the original manuscripts were also lost in due course of time and it is impossible to trace those manuscripts at present. Considering all

the available resources the main six cleansing *Karmas* or *Kriyā* are – *Dhautī, Basti, Netī, Tratak, Naulī, and Kapālabhātī*. However, the two additional *Karmas* namely *Cakri* and *Gajakarani* also mentioned in *Haṭha Ratnāvalī* but the fact that those two *Kriyās* also greatly coincide with the other main six *Kriyās*. Regular practice of these *Kriyās* purify our body and maintain perfect sound health. It also increases the physical, psychological, emotional, spiritual and intellectual levels of the human being. This research paper is purely based on materials reviewed and different types of potentially helpful manuscripts.

End Notes –

1. Gharote M, Parimal D. Hatharatnavali, A treatise on Hatha Yoga of Srinivasa yogi, Motilal Banarsidass;2003.
2. Muktibodhananda S, Saraswati SS. Haṭha Yoga Pradīpikā. Yoga Publication Trust: Mungeli; 2000.
3. Nagendra HR, Nagrathana R. Promotion of Positive Health. Bengalore: Swami Vivekananda Yoga Prakashana; 2001.
4. P.S. Swathi, B.R. Raghavendra, Saoji A.A, Health and Therapeutic benefits of Śaṭkarma, A narrative review of scientific studies, Journal of Ayurveda and Integrative medicine. 2021; 12(1):206
5. Saraswati SN. Gheraṇḍasamhitā : Commentary on the yoga teachings of Maharshi Gheranda, Mungar: Yoga Publications Trust; 2012.
6. Yogeshwar G. Kunjara – The Yogic Stomach Wash. Ancient Sci Life ; 1992.
7. <https://digital.nios.ac.in/shatkarma>, DOI:15/11/2021.
8. <https://wikipedia.org/wiki/shatkarma>, DOI:19/11/2021.

Bibliography

1. Ajmer Singh et. Al., “Essential of physical education, Delhi Kalyani publication, 2004.
2. Chandrasekaran K. Sound health through yoga, Premkalyan Publications, Sedapatti, Madurai, 1999.
3. Cheriya Narayana Nambudari. Ashtanga Hridaya Samhita, Choukamba Krishnadas Academy, Varanasi, 2007.
4. Dipak BC. The effect of Anulom Vilom and Kapalbhāti Prāṇāyāma on Positive attitude in School going children. Edubeam Multidiscip online Res, 2013; J.7: 1-8.
5. Gathore M.L. “Applied Yoga” S.M.Y.M. Kaivalyadhama Lonavala – 410403, 1990.

6. Iyenger B.K.S, Light on Yoga, London : Unwin paper backs, 1989.
7. KN Udappa : Stress and its management by yoga, Motilal Banarasidas Publishers private limited, New Delhi ; 1996.
8. Lalvani Vimla, Yoga for Stress, Hamlyn Publishers, London, 1998.
9. Nagendra H.R. Yoga Practices for Anxiety and Depression, Swami Vivekananda Yoga Prakashana, Bangalore ; 2004.
10. Patra S. Physiological effect of Kriyās : cleansing techniques, International Journal of Yoga, Philos Psychol Parapsychol, 2017, 5:3.
11. Pradhan R. Sripatanjalayogadarshanam – original Sanskrita, Padaecheda and Transliteration, Kaivalyadhama, Lonavala, India, 2019.
12. Swami Maheshanandaji. Hatha Ratnavali, Kaivalyadhama S.M.Y.M. samiti, 2002.
13. Swami Muktibodhananda. Haṭha Yoga Pradīpikā, Published by Bihar School of Yoga, Third Edition, 1998.
14. Swami Niranjanananda Saraswati, Gheraṇḍasamhitā, Yoga Publication Trust, 2012.
15. Upadhyay Dhunqel K, Malhotra V, Sarkar D, Prajapati R Effect of alternate nostril breathing exercise on cardio respiratory functions:Nepal Med. Coll. J. 10(1): 25-27, 2008.
16. Vishwas Mandlik. Yog Shikshan Mala, Yog Parichay, 6th Edition, Yogchaitanya Publication, Nashik : 36-45, 2001.
17. Yadav R. K. & S. Das, Effect of Yogic practice on pulmonary functions in young females, Indian Journal of Physiology & Pharmacology 45(4) : 2001.
18. <https://kdham.com>, DOI : 08/11/2021
19. <https://nios.ac.in/introductiontohathayoga>, DOI : 15/11/2021.
20. <https://wikipedia.org/wiki/hathayogatexts>, DOI : 12/11/2021.

शब्दशास्त्रवतां वृत्तिस्वरूपविचारः

लोकेशकुमारः¹⁵⁸

प्रमुखशब्दाः शब्दः, अर्थः, अर्थज्ञानम्, वृत्तिः, शक्तिः, लक्षणा, व्यञ्जना, शाब्दबोधः।

शोधसारः तत्तद्भाषाविदैः प्रत्यहं तत्तद्भाषाणामनेके शब्दाः श्रुतिपथमानीयन्ते, किन्तु तथाविधा अपि ते सर्वे शब्दाः सर्वमर्थं न प्रत्यायन्ति। तेषु केचिदेव कांश्चिदेव कदाचिदेव। तथा साधु श्रुतिविषयतां गतमपि गङ्गापदं प्रवाहमेवार्थं बोधयति, न तस्मिन् चरतो गवादीन् नापि तत्तरुहान् वृक्षादीन् वा अतस्तत्र केनापि महता कारणेन भाव्यमेव। अनिष्टप्रमाणे कारणेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामयमेव हेतुर्दृश्यते। भवति यद्यमर्थं यत्पदमवभासयति, तेनार्थेन साकं तस्य पदस्य कश्चन सम्बन्धोऽवश्यं स्यादेव। अन्यथा तमेवार्थं कथमवगमयति, अर्थान्तरमप्यवगमयेत्। लोके दृष्टव्यमप्येतद् यत्चक्षुरादीनि प्रमाणानि सम्बद्धमेवार्थं यत्पटादिकं प्रकाशयन्ति, नासम्बद्धम्। शब्दोऽपि अन्यतमप्रमाणमिति सम्बद्धमेवार्थम् अवभासयेत्। अत एव ते ते शब्दा घटादयस्तान् तान् कम्बुञ्जीवादिमदर्थानि प्रबोधयन्ति सम्बद्धत्वात्, असम्बद्धत्वात् पटादीन् नेति शब्दार्थयोः कश्चन सम्बन्धः कल्पनीय एव। अयमेव च सम्बन्धो वृत्तिपदेन शब्दव्यापारादिपदेन चोच्यत इत्यादिवृत्तिविचारः शाब्दिकसंख्या ततन्मतमुपन्यस्य सारतया शोधलेखेऽस्मिन्नागत्यते।

"अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थं सम्प्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते"¹⁵⁹ इति भगवद्भाष्यकृद्गणित्या शब्दानां व्यावहारिकत्वमुपादेयित्वं च लोकेषु नितरां स्फुटी बोधुतीति तन्वार्तिककृता कुमारिलेनापि शब्दोपयोगित्वमदमेवाक्षितक्षयीकृत्य प्रमाणयन्चक्रे :-

"सर्वो हि शब्दोऽर्थप्रत्यायनार्थं प्रयुज्यते"¹⁶⁰ इति

स चायं शब्दो यदर्थबोधनसाधकत्वेनोपयुक्तः, तत्कथममुष्मात्प्रयुज्यमानादर्थज्ञानं सम्बोधयतीति, कानि वास्य साधनभूतानि भवन्तीति विजिज्ञासा समुज्जृम्भते। भगवतात्र पाणिनिना "प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्"¹⁶¹ इति प्रब्रुवता लोकव्यवहार एवार्थज्ञाने साधनत्वेन प्रमाणयते। तथा ह्यस्य पाणिनीयसूत्रस्य व्याख्यानप्रसङ्गे काशिकाकृतो वचनम् - "लोकत एवार्थगतः। यश्च लोकतोऽर्थः सिद्धः किं तत्र यत्नेन"¹⁶² इति। भगवान् भाष्यकारश्च प्रकृतमाचार्याभिप्रायमिममेवमेवं निरूपयामास :-

"यदि तर्हि लोक एषु प्रमाणम्, किं शास्त्रेण क्रियते? लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः"¹⁶³ इति।

इदानीं नागेशादयस्तु वृत्तज्ञानमप्यर्थज्ञानस्य साधनत्वेन बहुरां मन्वते। नहि वृत्तिज्ञानादिना शाब्दबोधः सम्भवतीति प्रतिष्ठापयता यथा नागेशेनेदमभ्यधासि :-

¹⁵⁸ शोधच्छत्रः, व्याकरणविभागः, श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वेरावलम्, गुजरातप्रदेशः।

¹⁵⁹ न वेति विभाषा, पातञ्जलमहाभाष्यम्, 1.1.44

¹⁶⁰ मीमांससूत्रम्, 1.3.8, तन्वार्तिकम्

¹⁶¹ पाणिनीयाष्टाध्यायी, 1.2.56

¹⁶² काशिकावृत्तिः, 1.2.56

¹⁶³ पातञ्जलमहाभाष्यम्, परमशाहिकम्

"तत्रानुहीतवृत्तिकस्य शाब्दबोधादर्शनात्"¹⁶⁴ इति।

शाब्दबोधाभिप्रायमुद्दिश्य अस्माच्छब्दायमर्थो बुध्यत इति ज्ञानं पुरस्तादेव सुतरामभीष्यते। इदमेव वृत्तिज्ञानं शक्तिज्ञानत्वेन वा शक्तिब्रह्मत्वेन वापि सम्बोध्यते बुध्यते। शाब्दिकानां वृत्तिज्ञानमिदमेवोपलक्षयान् किञ्चिद्यथाबोधं वितन्त्यते।

शब्दस्य प्रमाजनकत्वे सर्वैः शब्दैः सर्वेषां श्रोतॄणां श्रवणमात्रेण बोधः स्यादिति शाब्दबोधं प्रति वृत्तिप्रयोज्योपरिस्थितेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणत्वमभ्युपपद्यते। शब्दतत्त्वविदां शब्दस्य तरिम्न सामर्थ्यरूपे व्यापारे वृत्तिशब्दस्य प्रयोगोऽभिमतः, येन विज्ञानेन तदार्थं ज्ञातिरि बुद्धिमारादन्तीति। अयम् व्यापारः सम्बन्धत्वेन विगण्यते बुध्यते। एवं हि शब्दार्थयोः शाब्दबोधोपपत्तिकः सम्बन्धः, अर्थप्रतियोगिकः पदानुयोगिकः पदप्रतियोगिकोऽनुयोगिको वा सम्बन्धो वृत्तिरिति निगद्यते। तस्माद्दूतैर्लक्षणं वृत्तिपदव्यवहार्यत्वम्, अर्थपदोभयनिरूपितसम्बन्धत्वं वेति वेदितव्यम्। इयं वृत्तिरनेधा परिगण्यते। यथा हि नागेशो व्याजहार -

"सा च वृत्तिस्त्रिधा, शक्तिर्लक्षणा व्यञ्जना च"¹⁶⁵ इति।

यद्यपि लक्षणाव्यञ्जने वैयाकरणैर्न स्वी क्रियते। तथापि लक्षणाव्यञ्जनाविषयको व्यवहारस्तेषामप्रसिद्धशक्तिपदपर्यायान्त्वान्या तत्र तत्र भवतीति तदनुसृत्य वृत्तिभेदत्वेनात्र लक्षणाव्यञ्जने समुपादीयेत एव।

1. शक्तिविचारः -

तत्र शक्तिस्तावन्न ईश्वरेच्छारूपा, इच्छारूपा वा, व्यवहारात्स्या ज्ञानस्यासम्भवात् तथाहि वृत्तिज्ञानं व्यवहाराज्जायते, यथा सर्गादौ प्रयोजकवृद्धेन 'घटमानय' इत्युक्ते घटमानयन्तं प्रयोज्यवृद्धं पश्यता बातेनानुमीयते 'अयं प्रयोज्यवृद्धः' 'घटानयनं मत्कार्यम्' इति ज्ञानवान्, घटानयनविषयकचेष्टावत्वात्, ततः 'प्रयोज्यवृद्धज्ञानम्' 'घटमानय' इति वाक्यजन्यम्, तद्वाक्यश्रवणव्यवहितोत्तरमेव तत्प्रवृत्तेः' इत्यनुमानेन ज्ञानजनकत्वं वाक्ये विनिश्चीयते। तत आवापोद्गाभाभ्यामन्वयव्यतिरेकेण पदादिव्यपि पदार्थविषयकबोधजनकत्वं निर्धार्यते। तच्च पदे वाक्ये वा बोधजनकत्वं बोधकारणीभूतपदावाक्ययोरर्थेन सह सम्बन्धाभावे नोपपद्यते, विषयेण सह सम्बन्धानामेव प्रमाणानां चक्षुरादीनां ज्ञानोत्पादकत्वदर्शनात् नहि घटेन सह सम्बन्धं विनैव चक्षुरादि ज्ञानं जनयति।

एवञ्च कारणत्वान्यथानुपपत्त्या कल्पमानः शक्तिरूपः कारणसम्बन्धो ज्ञानरूपकार्योत्पत्तेः प्रागेवापेक्षयते। तदानीं नैयायिकाभिमतस्य ईश्वरेच्छारूपस्य इच्छारूपस्य वा सम्बन्धस्यासिद्धत्वेन ज्ञाताया एव शक्तेर्बोधकत्वेन शक्तिब्रह्मासम्भवः स्यात्। इदमत्राभिप्रेतम् - शाब्दबोधात् प्राक्तकारणीभूतं शक्तिज्ञानमपेक्षितम्। बोधजननात् प्राक् बोधजनकत्वाभाववदितं पदम् इति निश्चयसत्त्वेन तद्गतज्ञानं प्रति तद्भाववतानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वे इदं पदमेतदर्थविषयकबोधजनकतावत् इत्यादिस्वरूपस्य बोधजनकत्वघटितेच्छात्मकस्य शक्तिपदार्थस्य ज्ञानसम्भाव्यमेवेति तत्तम् किञ्च ईश्वरेच्छाया ईश्वरज्ञानस्य वा शक्तिव्यतिरेकतत्पक्षात्प्राप्तियुक्तेरभावात्

¹⁶⁴ वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, वृत्त्यर्थविचारः।

¹⁶⁵ तत्रैव

अभ्यस्वीकारे तार्किका गौरवपराहता भवेयुः। जानाति, इच्छति, ततो यतते इति क्रमदर्शने तु प्रत्युत ज्ञानस्य शक्तिरूपे प्राथम्यमेव विनिगमकम्।

अथ च 'दण्डाद्दटो जायताम्' इत्यादीच्छाविषयत्वमेव दण्डादौ घटादिकारणत्वं स्यात्। तथा चेच्छातिरिक्तलोकप्रसिद्धस्य कारणत्वरूपधर्मस्य विलयः स्यात्। यदि तु दण्डादौ स्वरूपसती शक्तिः कार्यात्पादिका, शब्दनिष्ठा तु ज्ञातैवेति वैतक्षण्यदर्शनात् तत्रातिरिक्तशक्तिस्वीकारे न किञ्चिद्वाधकमित्युच्यते, तदा तु यथा प्रत्यक्षस्थले संयोगसमवायादिसन्निकर्षणघटादिना सम्बद्धानामेव वक्षुयदीनां प्रत्यक्षप्रमाणकत्वं न तु जनकत्वघटितेच्छारूपसम्बन्धेन वा, तथा शब्दस्यापि प्रमाणत्वेन तदतिरिक्तसम्बन्धेनार्थेन सह सम्बद्धस्यैव शाब्दज्ञानजनकत्वमुचितम्। अन्यथा 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इत्याद्यनुमितस्थलेऽपि हेतुसाध्ययोः 'धूमज्ञानजन्यज्ञानविषयो वह्निर्भवतु' इतीच्छाविषयत्वेन वह्निविषयकबोधजनकत्वरूपेण वा सम्बन्धेन निवर्द्धि हेतुसाध्ययोर्नैवाधिकारिभिमताव्याप्तिरूपसम्बन्धोच्छेदापत्तिः।¹⁶⁶

तरमात् पदपदार्थयोर्बोधजनकत्वं तद्वदितेच्छादिरूपश्च सम्बन्धो नोचितः। किन्तु वाच्यवाचकपदव्यवहारी निरुक्तेच्छादिभिन्नं पदपदार्थयोः सम्बन्धान्तरमेव शक्तिः। तत्र वाचकत्वं वाच्यत्वं च न क्रमेण बोधजनकत्वरूपं बोधविषयरूपं च, किन्तु स्वस्वपदार्थरूपं पदार्थान्तरम्।¹⁶⁷ अन्यथा पूर्वोक्तदोषापत्तिः नोपशममियात्। स च वाच्यवाचकभावः शब्दाद्योभयनिष्ठ एव। तथाविधशक्तिज्ञापकम् 'योऽयं शब्दः सोऽर्थः, योऽर्थः स शब्दः' इत्याकारकमितरेतसाध्यासमुत्तं तादात्म्यम्।¹⁶⁸ तदेव संकेतः। तस्यापि पदवृत्तिशक्तिज्ञापकत्वाच्छक्तिरिति व्यवहारः। पाणिन्यादिरस्मार्तसंकेतस्यैव वाचकतानियामकत्वं न त्वाधुनिकस्य।

प्राचीनवैयाकरणस्तु बोधजनकतां शक्तिमाहुः। यथा च निगदितं भूषणसारे :-

"इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा।

अनादिरर्थैः शब्दानां सम्बन्धो योग्यता तथा।"¹⁶⁹

इन्द्रियाणां वक्षुयदीनाम्, स्वविषयेषु वाक्षुषेषु घटादिषु, यथा अनादिर्योग्यता तदीयवाक्षुषादिकारणता, तथा शब्दानामपि अर्थैः सह तद्बोधकारणतैव योग्यता, सैव शक्तिरित्यर्थः इति। इयञ्च योग्यतारूपा शक्तिः पदार्थान्तरम् इति।

आलङ्कारिकास्तु संकेतसहकारिणी शक्तिः। संकेतस्तु शब्दार्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकलक्षणः सम्बन्धः, 'अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्यः' इति प्रवर्तकोपदेशो वा। स च शब्दे स्थितो ज्ञातः सन् अर्थं विषयी करोति। अयं संकेतोऽर्थस्थितं पुरुषाज्ञानमुत्सार्थं ज्ञातृत्वं जनयति। तत्र शब्दवत्तत्र गता क्रियापि करणम्, प्रतीपस्य कारणत्वे सति तत्रभावत्। सैव शक्तिरित्याचक्षते।

2. लक्षणाविचारः -

शाब्दिका लक्षणां लक्षणशब्देन न मन्यन्ते, लक्षणाङ्गीकारे वृत्तिद्वयमवच्छेदकद्वयञ्च कल्पनीयं भवति। शाब्दबोधे लक्षणाजन्योपरिस्थितेः पृथक्कारणत्वं वक्तव्यम्। एवं पदार्थोपरिस्थितावपि तज्ज्ञानस्य हेतुत्वं स्वीकार्यम्।

¹⁶⁶ तत्रैव

¹⁶⁷ तत्रैव

¹⁶⁸ तत्रैव

¹⁶⁹ वैयाकरणभूषणसारः, शक्तिनिर्णयः, कारिका 37

परस्परजन्यबोधे परस्परभावमादाय व्यभिचारवारणाय अव्यवहितोत्तरत्वनिवेशे महद् गौरवम्। अतो गङ्गापदात् तीरप्रत्ययार्थं गङ्गापद एव शक्तिद्वयं स्वीकार्यम्। एका प्रसिद्धा, अपरा अप्रसिद्धा। अनीरथस्थस्वातावच्छिन्नपयःप्रवाहनिरूपिता प्रथमा शक्तिः, सामीप्यसम्बन्धावच्छिन्न-तीरत्वावच्छिन्नविषयकत्वावच्छिन्नार्थनिरूपिता शक्तिद्वितीया। एतच्च लक्षणया प्रतिपिपादयिषितस्याप्रसिद्धशक्त्यैव बोधनिवर्द्धि कोऽभिनवेशो लक्षणायां प्रेष्यताम्।

3. व्यञ्जनाविचारः -

शाब्दिका व्यञ्जनामप्येकां तृतीयां वृत्तिमभ्युपपद्यन्ते तथा चोक्तं नागेशेन -

"मुख्यार्थबाधग्रहणरिपेक्षबोधजनको मुख्यार्थसम्बद्धासम्बद्धसाधारणप्रसिद्धाप्रसिद्धार्थ-विषयको वचनादिवैशिष्ट्यज्ञानप्रतिभाद्युद्भूतः संस्कारविशेषो व्यञ्जना इति। अत एव निपातानां द्योतकत्वं स्फोटस्य व्यङ्ग्यता च ह्यर्थादिरुक्ता द्योतकत्वं च 'वचयित् समभिव्याहृतपदीयशक्तिव्यञ्जकत्वम्' इति वैयाकरणानामपि तत्स्वीकार आवश्यकः। एषा च शब्दतदर्थपदपदैकदेशवर्णरचनाषेष्टादिषु सर्वत्र, तथैवानुभवात्। वचनादिवैशिष्ट्यादिज्ञानं व्यङ्ग्यविशेषबोधे सहकारीति न सर्वत्र तदपेक्षेत्यन्यत्र विस्तारः।"¹⁷⁰

"शाब्दिकैः सा स्मृतैकैव त्रिविधापि स्वगदिवत्।

अभिधा लक्षणा व्यक्तित्वाख्यात्रितयं मतम्।"¹⁷¹

"विविधा वृत्तिरैकैव वैलक्षण्येऽपि वस्तुतः।

इत्याहुः शाब्दिकारतेषां भिन्नत्वे गौरवाद्भयम्।"¹⁷²

यथैक एव स्वरो ह्रस्वदीर्घप्लुताभेदेन त्रिविधो भवति तथा शक्तिरेव शब्दवृत्तिरभिधालक्षणाव्यञ्जनाभेदेन त्रिविधा भवति। तृतीयां भेदे गौरवमस्ति।

अत्र वैयाकरणाः - "शक्तिरेव शब्दवृत्तिः, तस्याश्च प्रसिद्धप्रसिद्धिभ्यां शक्तिरलक्षणाव्यपदेशः, व्यञ्जना तु तत्रान्तर्भवति दीर्घव्यापारादिनि।"¹⁷³ एवं च शाब्दिका व्यञ्जनावृत्तिं नाभ्युपगच्छन्तीति वैयाकरणमतमभ्युह्य प्रत्याख्यातमाश्रायभेदेन कोविदानन्दे त्रिवेणिकायां च। तस्यायं भावः स्यात्, द्वाप्यादिप्राचीनतमेष्वाकारबन्धेषु वचयितपि व्यञ्जनाविषयको विशिष्टविचारो नोपलभ्यते। टीकादिबन्धेषु च 'वृत्तिश्च शक्तिरलक्षणाऽन्यतरूपा' इत्येव लिखितम्, न तु व्यञ्जनाविषयको 'अन्यतरूपा' इति। लक्ष्यार्थस्थ माणवकादेर्नियतोपरिस्थितिकत्वाभावेन सिंहादिपदरूपप्रातिपदिकार्थत्वाभाशङ्कां मनसि निधाय 'अन्यतानुपपत्तिपूर्विका लक्षणा पदे एव'¹⁷⁴ इत्येव शेषस्वरूपेणोक्तम्, न तु व्यञ्जनास्थतेऽपि शङ्कासमाधाने समुद्भवितो व्यञ्जनास्वीकारे तु तत्रापि नियतोपरिस्थितिकत्वाभावे तयोरेवद्वानमवशं कर्तव्यमासीत्।

यद्यपि स्फोटवादे ये श्रद्धयन्ते, तैरेश्वर्यं व्यञ्जनाङ्गीकर्तव्यम्। अन्यथा सकलशाब्दिकाभिमता तस्य व्यङ्ग्यता नैव सिद्धा भवेत्। अत एव नागेशभेदेन व्यञ्जनास्वरूपं प्रदर्शयित् - 'अत एव निपातानां द्योतकत्वं स्फोटस्य व्यङ्ग्यता च

¹⁷⁰ वैयाकरणसिद्धान्तलघुमन्त्र्या

¹⁷¹ कोविदानन्दः, श्लो. 42

¹⁷² तत्रैव, श्लो. 19

¹⁷³ त्रिवेणिका, पृ. 37

¹⁷⁴ लघुशब्दशेखरः, पृ. 519

ह्यादिभिर्भक्त्या द्योतकत्वच वचिन् समभिव्याहृतपदीयशक्तिव्यञ्जकत्वमिति वैयाकरणानामपि तत्स्वीकार आवश्यकः¹⁷⁵ इति तथापि तार्किकेषु श्वातिकविद्येयानां शब्दिकानां तार्किकमतप्रत्याख्यानमात्रफलको व्यञ्जनासमर्थनप्रयासो भवेत् अन्यथा तक्षणायाः प्रत्याख्याने "जघन्यवृत्तिकल्पनाया अन्यास्यत्वात्, वृत्तिद्वयावच्छेदकद्वयकल्पने गौरवात्, सति तात्पर्ये 'सर्वे सर्वार्थवाचकाः' इति भाष्याल्लक्षणाया अभावात्"¹⁷⁶ इत्यादयो यावन्तो हेतवो नागेशेन प्रदर्शितास्तो सर्वेऽपि व्यञ्जनां कथं न विरुन्ध्युः।

व्यञ्जनाया यावानर्थो व्यङ्ग्यो भवति, तावान् सर्वोऽप्यप्रसिद्धशक्त्या व्यक्तो भवित्यति व्यञ्जनावृत्तौ श्रद्धामावहतामातङ्कारिकाणां मते सहदयैरेव व्यङ्ग्योऽर्थोऽवगम्यते, तादृशोऽर्थोऽप्रसिद्धशक्त्या वैयाकरणैर्भोत्स्यते, किं व्यञ्जनाया? तथा चोक्तं नागेशेन "शक्तिर्दिष्टा प्रसिद्धा, अप्रसिद्धा च आमन्दबुद्धिवेद्यात्वं प्रसिद्धात्वम्, सहदयहृदयमात्रवेद्यात्वमप्रसिद्धात्वम्। तत्र गङ्गादिपदानां प्रवाहदौ प्रसिद्धा शक्तिः, तीरदौ चाप्रसिद्धेति किमनुपपन्नम्। ननु सर्वे सर्वार्थवाचका इति ब्रूये चेत्, तर्हि घटपटात् घटप्रत्ययः किन्न स्यादिति चेत् न; सति तात्पर्ये इत्युक्तत्वात् तात्पर्याभावादिति गृहणा तात्पर्यचित्रैश्वरं देवतामहर्षिलोकवृद्धपरम्परातोऽस्मदादिभिर्लब्धमिति सर्वं सुरुद्धम्"¹⁷⁷ इति।

एवं च यथा तक्षणास्थते तात्पर्यवशादप्रसिद्धया शक्त्यैवेष्टार्थस्य लाभस्तथा व्यञ्जनास्थतेऽपि वक्तादिवैशिष्ट्यसहकारेणाप्रसिद्धशक्त्यैवेष्टार्थताभो भवित्यति, किं व्यञ्जनाया? यदि ह्यादिभिर्निपातानां द्योतकत्वस्वीकारात् स्फोटस्य व्यङ्ग्यत्वस्वीकारात् शब्दिकैर्योतकरूपं व्यञ्जना स्वीक्रियते, तर्हि प्रादीनां द्योतकत्वाङ्गीकारान्नैयायिकैरपि सा स्वीकर्तव्या भवेत्, न च तैः स्वीक्रियते। यद्यन्यदेव व्यञ्जकत्वं तेषां तर्हि शब्दिकानामपि तदन्यदेवास्ताम्, किं तक्षणाभेदेनाशिकतास्वीकारणैरेणा एवम् शब्दिकानां व्यञ्जनायामनास्था प्रतीयत इति वेद्यम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. पातञ्जलमहाभाष्यम्, सम्पा. श्रीभार्गवशास्त्रीजोशी, चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानम्, दिल्ली, 1987
2. पाणिनीयः अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, सम्पा. ब्रह्मदत्तजिज्ञासुः, रामतालकपूरस्ट, बहालगढ़, वि.सं. 2058
3. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, नागेशभट्टः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1925
4. काशिका न्यासपदमञ्जरीसहिता, तारा प्रिन्टिंग वर्क्स, वाराणसी, प्रथमसंस्करणम्, वि.सं. 2043
5. वाक्यपदीयम्, सम्पा. स्युनाथशर्मा, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, 1991
6. परमलघुमञ्जूषा, नागेशभट्टः, बरोडा संस्कृतमहाविद्यालयः, बरोडा, 1961
7. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1951
8. वैयाकरणभूषणसारः, कौण्डभट्टः, ज्योतिषप्रकाशप्रेश, काशी, 1965

¹⁷⁵ वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा
¹⁷⁶ परमलघुमञ्जूषा, लक्षणनिर्णयः
¹⁷⁷ तत्रैव

लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे रसविमर्शः

रविन्द्रनाथवारः¹⁷⁸

प्रमुखशब्दाः लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारः, वैदिकवाङ्मये रसः, तौक्तिकवाङ्मये रसः, रसस्वरूपम्, रससम्प्रदायः, शृङ्गाररसः, हास्यरसः, वीररसः, शान्तरसः।

शोधसारः-रससम्प्रदायस्य प्रवर्तकः भवति भरतमुनिः। तेन रसस्वरूपनिरूपणाय स्वीये रससूत्रे सूत्रितं यत्- विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगादसनिष्पत्तिः। ततः दर्शनाचार्याः ततदर्शनानुसारम् अस्य सूत्रस्य व्याख्यामकुर्वन्। तत्र केचन नैयायिका, केचन् वेदान्तिनः, केचन् मीमांसकाः केचन् द्वैतिनः। तत्र नैयायिकः श्रीशङ्कुकः रसानुभूतिरनुमितिजन्येति प्राप्यन्यायानुसारेण प्रत्यपादयत्। एतन्मते विभावानुभावव्यभिचारिभ्यो अनुमितः स्थास्यते रसः अनुकार्यं नटादौ यत्र गृहितैः विभावादयनुकार्यभिन्नं नटे रसस्यानुमानं क्रियते। वेदान्तानुसारी भट्टनायकः काव्यं भावकत्वभोजकत्वनाम्नी द्वे स्वतन्त्रे शक्तिं अनुपगम्येते प्रक्षुपकयोः साधारणी भावजन्यो अयमिति मन्यते स्म। एतन्मते रसास्वादः ब्रह्मास्वादसद्वेदरः। काव्यानन्द-ब्रह्मानन्दयोः अवश्यमेव भेदः यत् काव्यानन्दे चैतन्यं विषयस्थ भवति न तु ब्रह्मानन्दे। मीमांसकानुसारिणः भट्टोत्पलटयोत्पतिवादानुसारं विभावादिकारणैरसहृदयम-यन्यादिदर्शनजन्यं नलादिसमवेतरन्युद्बोधस्य स्थापिभावस्य तत्कार्यकटाक्षादिसञ्चारी-तोत्कण्ठादीनाञ्च अनुकार्यं नलादिनैव सम्बन्धात्तत्रैव रसमुत्पद्यत नटे तु ततदनुकृत्य साट्शयमूलाकारोपी विधीयते। साम्प्रतम् आधुनिकसाहित्ये एकादशरसाणाम् एव गणना क्रियते। यथा शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक-बीभत्स-अद्भुत-शान्त-भक्ति-वात्सल्यरसाः च। अस्मिन् शोधप्रबन्धे वेङ्काम्नायप्रणीतः लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे नैकाः रसाः वर्णनमस्ति।

रसः शब्दः 'रस्' धातोः 'अच्' प्रत्ययान्ते निष्पद्यते। भारतीयसंस्कृतवाङ्मयस्यातीव प्राचीनेषु शब्देषु रसशब्दोऽयमन्यतमः। पुनः रसशब्दस्य जले, वीर्ये, शृङ्गारादौ, विषे, द्रवाद्यौ च प्रयोगो लक्ष्मिप्रथमवतरति। यथोक्तं हेमकोशे-

रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवो

बत्ने रणे गृहे धातो तित्कालो पारदेऽपि च।¹⁷⁹

वेदवेदाङ्गादिषु शतशः प्रयुक्तं रसशब्दमवलोक्य निःसन्देहतयेदं वक्तुं शक्यते यदा यजुर्वेदीयतौक्तिकरसाः काव्यशास्त्रीयातौक्तिकरसाश्च वेदरत्नाकरादेव आविर्भूता इति। वैदिकवाङ्मये तौक्तिकवाङ्मये च रसशब्दः भिन्नार्थे प्रयुक्तः।

➤ वैदिकवाङ्मये रसः -

१- मधुरार्थे - स्वादु रसो मधुपेयोवराया¹⁸⁰

¹⁷⁸ VILL+P.O- DUBDA, P.S - EGRA, DIST- PURBA MEDINIPUR, WEST BENGAL- 721448

¹⁷⁹ हे.को. पृ-७२

¹⁸⁰ ऋ.वे. ६.४.४४/२२

- २- सोमरसार्थे - सोमो अर्पति धर्णसिर्दधान इन्द्रिय रसम्¹⁸¹
- ३- दुग्धार्थे - यो नो रसं दिणसति पीत्वा अब्रे यो अ०धानां यो गवां भरतनूनाम्¹⁸²
- ४- जनार्थे - रसेन समगंरमहि¹⁸³
- ५- षड् ऋतुणाम् - नमो वः पितरो रसाय¹⁸⁴
- ६- दधि-मधु-घृतादिशब्दार्थे - तां रसोनाभिर्यताम्¹⁸⁵
- ७- शोणितार्थे-या रसस्य हरणाया¹⁸⁶
- ८- प्राणार्थे - प्राणो वा अङ्कानां रसः।¹⁸⁷
- ९- सूक्ष्मार्थे- येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शं मैथुनात्प्राप्तैर्नैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते एतद्वेत्तम्¹⁸⁸
- १०- आध्यात्मिकार्थे - मनोमयः प्राणशरीरो भावरूपः सत्यसङ्कल्पः आकाशात्मा सर्वकार्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः...।¹⁸⁹

११- तैत्तिरीयोपनिषदि - रसो वै रसः। रसः हेयेवायं लब्धवानन्दी भवति।¹⁹⁰

१२- काव्यात्मत्वेन - यः वानु वै रसस्तावानात्मा¹⁹¹

१३- साख्यानतत्त्वार्थे - गायत्र्यादीनि छन्दांसि हि रसः। आद उ वे रसः।¹⁹²

➤ **तौक्तिकवाङ्मये रसः -**

१- रामायणे रसः - संस्कृतवाङ्मये आदितकाव्यम् उपजीव्यकाव्यं च रामायणम् महर्षे वाल्मीकिः करुणरसमयी वाणी वस्तुतः रामायणस्य रचनायाः श्रोतः।

मा निषाद ! प्रतिष्ठांस्त्वमगमश्शाश्वताः समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।¹⁹³

स्वयं ऋषि उक्तवान् श्लोकस्य कारणं शोक एव -

शोकार्तस्य प्रकृतो मे श्लोकः भवतु नान्यथा।¹⁹⁴

रामायणे नवरसाणाम् उल्लेखः वर्तते।

पाठ्ये गाने च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरनितम्।

¹⁸¹ ऋ.वे. १.२.२३/५

¹⁸² ऋ.वे. ७.२३/२३

¹⁸³ ऋ.वे. १. २३/२३

¹⁸⁴ य.वे. २/३२

¹⁸⁵ अ.वे. ६.६७/१

¹⁸⁶ अ.वे. १.८.३

¹⁸⁷ वृ.उ. १.३.१९

¹⁸⁸ क.उ. ४/३

¹⁸⁹ छा.उ. ३/२

¹⁹⁰ तै.उ. ३/७

¹⁹¹ श.ब्रा. ७.२.३/४

¹⁹² श.ब्रा. ७.३.१

¹⁹³ रामा. १/२/१५

¹⁹⁴ रामा. १/२/१८

जातिभिः सप्रभिरुद्धं तन्नीलयसमन्वितम्।¹⁹⁵

रसे शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।

वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदब्रायताम्।¹⁹⁶

आनन्दवर्धनेन उक्तम् रामायणे हि करुणरसः स्वयमादिकविना सूचितः।

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा वादिकवेः पुसा

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थश्लोकः श्लोकत्वमागतः।¹⁹⁷

२- निरुक्ते रसः - निरुक्ते वास्तवः रसशब्दस्य प्रयोगं जल-तुषार-दुग्ध-किरणार्थेषु कृतवान्।

३- व्याकरणशास्त्रे रसः -

पाणिनीयव्याकरणे रसशब्दः धात्वर्थे तथा आस्वादनाथे तथा रनेहार्थे प्रयुक्तः। व्याकरणशास्त्रे रसशब्दव्युत्पत्तिः अनेन प्रकारेण भवति। रस्यते आस्वादयते इति रसः। रसाति रसयति वा रसः। रसनं रस आस्वादः रस्यते अनेन इति रसः।

४- आयुर्वेदशास्त्रे रसः - वास्तवमहामुनिः रसविषये एवं लिखति- रसनाथे रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा।¹⁹⁸

➤ **रसस्वरूपम् -**

रससिद्धान्तस्य प्रवर्तकः आचार्यभरतमुनिः “नहि-रसादते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।”¹⁹⁹ इत्युक्त्वा स्फुटीकृतवान् यत् काव्ये वर्णितमेतादृशं किमपि वस्तु नास्ति यत् रसवर्जितं स्यात् यथाहि आत्मतत्त्वज्ञः परमात्मनो दर्शनं कृत्वा अपूर्वानन्दसन्देहनिमग्नो जायते तथैव काव्यमर्मज्ञाः सहृदयाः ब्रह्मानन्दसहोदरानन्दप्रदं रसमास्वाद्य आनन्दसागरे निमग्नाः जायन्ते।

रससम्प्रदायस्य प्रवर्तकः भवति भरतमुनिः। तेन रसस्वरूपनिरूपणाय स्वीये रससूत्रे सूत्रितं यत्- विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगादसनिष्पत्तिः²⁰⁰ तत् दर्शनाचार्याः तत्तत् दर्शनानुसारम् अस्य सूत्रस्य व्याख्यामकुर्वन् तत्र केचन नैयायिका, केचन वेदान्तिनः, केचन मीमांसकाः केचन द्वैतिनः। तत्र नैयायिकः श्रीशङ्कुकः रसानुभूतिरनुमितिजन्वयेति प्राप्यन्यायानुसारेण प्रत्यपादयत्। एतन्मते विभावानुभावव्यभिचारिभ्यो अनुमिताः स्थास्यते रसः अनुकार्यं नलादो यत्र गृहितैः विभावादयनुकार्यभिन्नं नटे रसस्यानुमानं क्रियते। वेदान्तानुसारी भट्टनायकः काव्यं भावकत्वभोजकत्वनाम्नी द्वे स्वतन्त्रे शक्ति अनुपगम्येते प्रक्षुषकयोः साधारणी भावजन्यो अयमिति मनुते स्म। एतन्मते रसास्वादः ब्रह्मास्वादसहोदरः। काव्यानन्द-ब्रह्मानन्दयोः अवश्यमेव भेदः यत् काव्यानन्दे चैतन्यं विषयस्थपं भवति न तु ब्रह्मानन्दे। मीमांसकानुसारिणः भट्टोल्लटयौत्पत्तिवादानुसारे विभावादिकारणैरसहृदयम-यन्त्यादिदर्शनजन्यं नलादिसमवेतरनुद्बोधस्य स्थायिभावस्य तत्कार्यकटाक्षादिसञ्चारी-तोत्कण्ठादीनाञ्च अनुकार्यं नलादिनैव सम्बन्धात्तत्रैव रसमुत्पद्यत नटे तु तत्तदनुकृत्य सादृश्यमूलकारोपी विधीयते।

¹⁹⁵ रामा. १/४/८/७

¹⁹⁶ रामा. १/४/८/९

¹⁹⁷ ध्व.लो. १/५

¹⁹⁸ च.सं. १/६३

¹⁹⁹ ना.शा. ६/३२

²⁰⁰ ना.शा. ६/३३

मम्मटेनापि काव्यप्रकाशब्रह्मणे रसलक्षणम् एवं प्रतिपादितम्-

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च
रत्यादिः स्थायिनो लोके तानि चन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावानुभावास्तत्कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स विभावार्थैर्तैः स्थायीभावो रसः स्मृतः॥²⁰¹

विश्वनाथेन उक्तं साहित्यदर्पणे-

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणं रतथा
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभाव सवेतसाम्॥²⁰²

धनञ्जयेन उक्तं दशरूपके-

कीडतां मृण्मयैर्यद्गतं बालानां द्विरदादिभिः।
स्वोत्साहः स्वदत्ते तद्दृक्छातृणामर्जुनादिभिः॥
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
अनीयमानः स्वादुत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥²⁰³

➤ रससम्प्रदायः -

यद्यपि राजशेखरेण काव्यमीमांसायामुक्तं यत् ब्रह्मणा सर्वप्रथमं रसस्योपदेशो नन्दिकेश्वराय प्रदत्तः। अतः स्यात् रसस्य प्रथमं निरूपणं नन्दिकेश्वरेणाकारितं न तु भरतमुनिना। किन्तु संयोगात् तन्निरूपितो रससिद्धान्तविषयको ब्रह्मणे नाद्यावधि समुपलब्धो अस्माभिः। यद्यपि वैदिकसाहित्ये रसादिशब्दानामुल्लेखो मिलति परमालङ्कारिकपरम्परयां रसादिस्वरूपनिरूपेण नाट्यशास्त्रकर्ता भरतमुनिरेव प्राथम्येन गण्यते। भरतमुनेः पूर्वमपि रसपरम्परा आसीदिति सत्यं, किन्तु तदानीन्तनस्य कस्यचिदपि ग्रन्थस्य तदब्रह्मण्यक्तुं प्राप्त्याभावात् आचार्यभरतादेव रससम्प्रदायस्यारम्भः स्वीक्रियते।

➤ रसभेदाः -

प्रथमतः रसः लौकिकः अलौकिकश्च भवति। वासनारूपरत्यादिभावानां संस्कारोद्देशो लौकिकसंयोगेन लौकिकरसः भवति। अलौकिकसंयोगेन अलौकिकरसः कथितः। रसभेदविषये नवरसाः, दशरसाः, द्वादशरसाः इति वादाः परिलक्ष्यन्ते। परन्तु शृङ्गारप्रकाशे शृङ्गार एव एको रसः इति स्वीक्रियते। आलङ्कारिकः भोजः वदन्ति यथा -

वीराद्भुतादिषु वे येह रसप्रसिद्धिः
सिद्धा कुतोऽपि वटयक्षवदाविभाति।
लोके गतानुगतिकत्ववशादुपेत

²⁰¹ . का.प्र. १/२७-२८

²⁰² . सा.द. ३/१

²⁰³ . द.रू. ४/९-१०

मातां निर्वतयितुमेव परिश्रमो नः॥²⁰⁴

तथैव भवभूतिरपि करुणरसः एक एवरसः इति मनुते तदुक्तम् -

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्न पृथग्पृथग्विवाश्रयते विवतीन्
आवर्तबुद्धदतरङ्गमयान्विकारात्
आम्भो यथा सतिलमेव तात्समस्तम्²⁰⁵

एवमेव केचनचार्याः नवरसान् स्वीकुर्वन्ति। पुनश्च रसाः दश इत्यपि कैश्चिदुक्तम्। तेषामभिप्रायः शृङ्गारदिनवरसैः सह वात्सल्ययोऽपि रसः। केचन भक्तिरसं स्वीकृत्य एकादश इति वदन्ति। कतिपयाचार्यैः आर्द्रताभिताप श्रद्धास्पृहादीश्वतुयो रसान् मत्वा नवरसांश्च गेतयित्वा त्रयोदश रसाः व्यवहियन्ते।

परन्तु साम्प्रतम् आधुनिकसाहित्ये एकादशरसाणाम् एव गणना क्रियते। यथा शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक-बीभत्स-अद्भुत-शान्त-भक्ति-वात्सल्यरसाः वा

❖ लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे प्रयुक्ताः रसाः -

▪ शृङ्गाररसः - शृङ्गारस्य तक्षणं साहित्यदर्पणानुसारं यथा-

शृङ्गं हि मन्मथोद्देहस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार ईष्यते॥²⁰⁶

शृङ्गमृच्छतीति शृङ्गारः। शृङ्गं नाम कामुकयुगलतयोरूपीडकम्। अनेन कामोद्भवेन यः सम्भूयते सः शृङ्गारः इत्युच्यते। अस्य रसस्यालम्बनविभाव उत्तमप्रकृतिको नायकः। परकीया अनुरागशून्या वेश्यानायिका अस्य आलम्बनानि न भवन्ति। तद्भिन्ना नायिकास्तथा च दक्षिणनायका अस्योपायिभ्युक्तमालम्बनानि, चन्द्र-चन्द्रिका-चन्द्रनानुतेपन-भ्रमरझङ्कारौदयउदीपनविभावाः, भुविक्षेप-कटाक्षादयोऽनुभावाः, औन्म-मरण-आलस्य-जुगुप्सादिव्याभिवारिभावान् विहाय अन्ये चार्य पोषकाः भवन्ति। रतिरस्य स्थायिभावः। वर्णः श्यामो देवता च विष्णुः, सम्भोगः, विप्रलम्भक्षेति अस्य द्वौ भेदौ स्तः।

अस्योदाहरणं यथा लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे -

सा मय्यस्त्यनपायरागभरिता यद्यप्यसाधारणी
पातिव्रत्यदशास्ति यद्यपि तथा तस्याः मयि प्रत्ययः।

जानीते मन एतदप्यविकल्पं मानोदयो बाधते माया सम्प्रति मयिनामपि परं किं वाऽऽद्य वक्ष्येऽपरम्॥²⁰⁷

अत्र माधवात्मनः रतेः आश्रयस्य रमाविषयकत्वेन उपस्थितस्य आलम्बनस्य तदीयगुणस्वभावादिविवारजनितस्योदीपनस्य मानोदयो बाधते इत्यादि वाक्यसमाक्षिप्तस्य मयनिवर्णतादि अनुभावस्य दैन्यादिरूपस्य व्यभिचारीणः संयोगात् माधवनिष्ठविप्रलम्भशृङ्गारस्य प्रतीतिर्जायते। एवमेवात्र केचन यथा -

²⁰⁴ . श्रु.प्र. १/१२

²⁰⁵ . उ.रा. ३/४७

²⁰⁶ . सा.द. ३/१८३

²⁰⁷ . ल.स्व.स. १/१९

पूजा या विधिरूढमुख्यविहिता सा चारतेर्भाजनं या दीनावनवातुरी परिणतिः सा वाद्य दूराहिता।
या सर्वश्रुतिशेखरैकवसतिरसा चापि नो येवते या सर्वज्ञ इति प्रथाऽपि यदि मे सा च व्यथाभागिनी॥²⁰⁸

पुनश्च -

या नो मुच्यति मामन्यशरणा प्रेमानुबन्धोज्ज्वला
यस्या नर्मकृतः क्षणं च विरहः कल्पान्तदायी मतेः। सा देशान्तरमेत्य जीवति परस्तां काङ्क्षते त्वद्विरा
लक्ष्मीर्मन्यनुयागिणीति तदहो लज्जाकुलं मे मनः॥²⁰⁹

पुनश्च -

आहारोऽपि न रोचते बुधजनैरायधने निर्मितः
स्वैरासामविहाररीतिरपि मे दूराधवचारयते।
व्याहारशुक्लशारिकाणिगदितरसूते कटुत्वं श्रुतौ
ताहत्तद्विरहासहिष्णुमनसा व्याप्तौ गुणव्यत्ययः॥²¹⁰

■ हास्यरसः -

विकृताकारवान्पेपचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
हास्यो हास्यस्थाधिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः॥²¹¹

यत्र अभिनेतुः आकारविकृतिः, वाग्विकृतिः, वेपविकृतिः, चेष्टाविकृतिरथवा अन्यविकृतयो वर्णिताः भवन्ति।
अथवा ताभिः विकृतिभिः अभिनयोः भवति तत्र हास्यरसोऽभिव्यज्यते। अस्य स्थाधिभावो हास्यः। वर्णः श्वेतः, देवता
प्रमथगणः, वचन चेष्टाः विकृतश्च आत्मबन्धविभावाः। नेत्रनिमीलनम्, मुखविकारासादयश्चानुभावाः। निद्रा-आलस्य
अवस्थित्थादयः व्यभिचारिभावाः भवन्ति। एवमेतेषां विभावानुभावव्याभिचारिभावानां संयोगात् हास्यरसः स्थाधिभावः
रसरूपेण यत्र अभिव्यज्यते तत्र हास्यरसः। अस्य षड्भेदाः उच्यन्ते। यथा- (1)उत्तमप्रकृतिगतः स्मितहास्यः
(2)उत्तमप्रकृतिगतः हसितहास्यः (3)मध्यमप्रकृतिगतः विहसितहास्यश्च (4)मध्यमप्रकृतिगतः अवहसितहास्यः
(5)अधमप्रकृतिगतः अपहसितहास्यः (6)अधमप्रकृतिगतः अतिहसितहास्यश्च। नेत्रनिमीलनस्योऽप्यस्य स्मित
इत्युच्यते। ढन्तानां सामान्यदर्शनं “हसितहास्यः”, येन चक्षुर्भ्यामशुधारा प्रवहति तत् “विहसितम्” येन स्कन्धः शिरश्च
कम्पेते तत् “अवहसितम्”, येन चक्षुर्भ्यामशुधारा प्रवहति तत् “अपहस्यम्” येन हस्तापादानां वेगन सञ्चालनं क्रियते तत्
“अतिहसितम्” इत्युच्यते।

अस्योदाहरणं यथा लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे -

अनुसरति सुरसमाजं अनुवर्तते दानवादिं स्वजनम्
उभयभ्रष्ट एष केन पुनः श्लाघनीयविभावाद्यः॥²¹²

²⁰⁸ . ल.स्व.स. १/२०

²⁰⁹ . ल.स्व.स. १/४६

²¹⁰ . ल.स्व.स. १/३५

²¹¹ . सा.द. ३/२१४

²¹² . ल.स्व.स. २/२०

अत्र निर्झितिरूपस्यालम्बस्य तदीय विकृतरूपदर्शनजन्यस्य उदीपनस्य करवातनादिकस्य अनुभावस्य चपलादि रूपस्य
व्यभिचारिणः संयोगात् निर्झितिनिष्ठ हास्यसायिकः हास्यरसः प्रतीतिपदमवतरति। एवमेवात्रकश्चन यथा -

सुरभूरुह एव पुष्पवाटी

मणिरस्यामर एव रत्नपेटी। पुर एव वसत्यजस्रगणया सुरराजस्य सुखानुभूतिकोटी॥²¹³

■ वीररसः -

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थाधिभावकः।
महेन्द्रदैवता हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः॥²¹⁴

यत्रोत्साहः स्थाधिभावो भवति तत्र वीररसो ध्वन्यते। उत्तमप्रकृतिकः जनोऽस्याश्रयः, वर्णः सुवर्णः, देवता महेन्द्रः, आत्मबन्ध
विजेतव्यः शत्रुः, उदीपनं शत्रोश्चेष्टाः, अनुभावाः युद्धदिसामग्र्योऽथवा अन्यान्यसाधनानामन्वेषणं, धृति-मति-गर्व-स्मृति-
तर्क-रोमाञ्चः व्यभिचारिभावाः भवन्ति। अस्य रसस्य चत्वारो भेदाः उच्यन्ते। यथा(1)दानवीरः (2)धर्मवीरः (3)युद्धवीरः
(4)दयावीरश्च।

उक्तं च लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे -

गरुडमरुदनीकिनीपरिविधूतसातावलिं
प्रदाण्डमुखघट्टनव्यथितसूतायोगणम्
पदाब्रतलितसितक्षितिधरासूतामुच्चरं
विधाय जलार्थं बलादहमुपाहृष्यामि ताम्॥²¹⁵

अत्र गरुडमदात्मनिष्ठस्य उत्साहस्थाधिकस्य तन्निष्ठत्वेन वर्तमानस्य आत्मबन्धस्य
अभीष्टजनानिष्ठदर्शनरूपस्योदीपनस्य गरुडमरुदनीकिनी इत्यादि समाक्षिप्तस्य पक्षोद्घेनेन मुखघट्टनदिरूपस्य
अनुभावस्य मदधृत्यादि रूपस्य व्यभिचारिणः संयोगात् गरुडमनोनिष्ठ वीररसः सहृदयमनोनिष्ठसाधारणी कृति महिम्ना
तदात्मनि आस्वाद्यते। एवमेवात्रकेचन यथा -

भो भो भुज ! प्रशममेहि ममेह यावदाभाति वाधिपतावनीयबुद्धिः।
तेनेव चेद्वयमुपेक्षयति पक्षापातूनूनं तदीयदमने
भवसि स्वतन्त्रः॥²¹⁶

पुनश्च -

गत्वा स्वयंवरमहोत्सवदर्शनाय

कृत्वा सुरासुरं वमूं न च पूजानाहाम्। हत्वा प्रियामनुसृतिप्रवणामनन्यां
खित्वा व्यथां हृदयजां शममेति तूर्णम्॥²¹⁷

पुनश्च -

यद्योर्दण्डविजृम्भिश्रमविदत्तपक्षाः पुरा भूधराः विदुत्याब्धिभमूं सदा शरणयन्त्यन्तर्जले यन्त्रिताः।
सर्वेषामपि यस्सुपर्वसदासामन्नेसश्श्रीकरः

²¹³ . ल.स्व.स. २/१६

²¹⁴ . सा.द. ३/२३२

²¹⁵ . ल.स्व.स. १/२१

²¹⁶ . ल.स्व.स. १/२५

²¹⁷ . ल.स्व.स. १/४७

सोऽयं दीव्यति मन्त्रसीमनि शचीकौमारहारी हरिः॥²¹⁸

■ शान्तरसः -

शान्तः शमस्थाधिभावः उत्तमप्रकृतिर्मता

कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः॥²¹⁹

यस्य शमः स्थाधिभावोऽस्ति सः शान्तरसः। उत्तमप्रकृतिका जना एव अस्य रसस्यास्वादनं कुर्वन्ति। अस्य वर्णः कन्दपुष्पस्य चन्द्रस्य च सुन्दरच्छाया इव धवलो भवति। देवता अस्य नारायणः। संसारोऽन्तः आधिभौतिक-आध्यात्मिक-आधिदैविकादिदुःखमयोऽस्तीति विचिन्त्य सांसारिकविषयान् प्रति अरुचिः तेषां निःसारतायाः ज्ञानं परमात्मनः स्वरूपज्ञानं च शान्तरसस्यालम्बनविभावाः पवित्राश्रमं, भगवतः, तीलाश्रमि, तीर्थस्थान, रम्यकाननय साधुसंगतिश्चादयः अस्योदीपनविभावाः। रोमाञ्च दया संन्यस्ततादयः अनुभावा कथयन्तो निवेदः, हर्षः, मरणं, मतिः, धृतिः, भूतदया, औरसुवयादयो व्यभिचारिभावाः सन्ति।
उक्तं च लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे -

भूमिरसदा भवतु सम्भृतसस्यजाता नाथा भवन्तु निजधर्मरताः पृथिव्याः।

साहित्यसम्पदभिवृद्धिमुपात लोकाः

सर्वान् सुखयतु क्षापितान्त रायाः॥²²⁰

■ वात्सलरसः -

अस्य स्थायीभाव वात्सल्यरसः आलम्बनं पुत्रादि आतिङ्गनम्, अङ्गसंस्पर्श, शिशुमूत्रं पुलकाङ्कुरा, आनन्दबाष्पादयः, अनुभावा अनिष्टाका ईतयः व्यभिचारिणः। लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे पुत्र्यां रमायां वरुणस्य वात्सल्यं स्पष्टतया अभिव्यज्यते। एवमेव देवीनामपि रमायाः विषये या रतिः सापि वात्सल्यस्थाधिभावरूपा अस्ति।

■ भक्तिरसः -

भक्तः भागवतगुणश्रवणमननादिभिः प्रापञ्चकाभावं प्राप्य शुद्धवैतन्यस्वरूपे परमात्मनि तिष्ठति प्रह्लादीनामिता तदा तेन भक्तिरसो अनुभूयते। भगवद्विषयकरिस्थाधिभावः ज्ञानाभावोः सम्मेलनेन भक्तिरसः भवति। एवं भक्तिरसः शान्तप्रीतिप्रेयो-वात्सल्य-मधुर-हास्य-अद्भुतादि-द्वादशभेदैः विभाजते। लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे नायकः माधवः स्वयमेवपुरुषोत्तम अस्ति। अतः तमधिकृत्य सम्पूर्णमिदं रूपकं भदवतोमाधवस्य आराधनास्वरूपमेव अपि च तृतीयेऽङ्के सर्वेऽपि देवाः विवाहमहोत्सवे सङ्गताः दृश्यन्ते। मल्लिकावूडः कुवलयपीडश्च ततदेवानां स्तुतिं कुरुतः अत्र सर्वत्र भक्तिरसोऽनुभूयते। सर्वेषां देवानां माधवे समादरः अवलोक्यते। अतएव माधवस्य पुरुषोत्तमत्वम् अभिव्यज्यते। एवं भक्तिरसोऽपि अनुभूयते।

प्रायः सर्वेऽसाः अङ्गरूपेण काव्येऽस्मिन् दृश्यते। समवकारे वीररसस्य अङ्गीत्वम् उक्तं वर्तते। अत्रापि माधवस्य दानवदमनं वीररसमेव प्रकाशते। धीरोदात्तस्य माधवस्य स्वभावः उत्साहपूर्णं वर्तते। सर्वेभ्यः अपि देवेभ्यः गम्भीरस्वभावेन असौ अब्रोगत्या अस्ति। लक्ष्मीस्वयंवरमहोत्सवे आगताः देवाः माधवस्य दर्शनम् अभिकान्क्षन्त्यः आसन्। कदापि ते

²¹⁸ . ल.स्व.स. २/२५

²¹⁹ . सा.द. ३/२४५

²²⁰ . ल.स्व.स. ३/४५

माधवस्य प्रतियोगिनः न आसन्। स्वयंवरानन्तरं माधवः सर्वेभ्यः अनुब्रह्मन् वितरति। एतेनापि अस्य उत्साहस्थाधिभावः वीररसश्च अभिव्यज्यते। वरुणः माधवं मनसि निधाय एव लोकैकवीर्यस्य सकलगुणपरिपूर्णाय एव मे पुत्री देया इति निश्चयेन स्वयंवरघोषणां करोति। अतः वीररसोऽत्र मुख्य इति निश्चयेन वक्तुं शक्यते।

एवं लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारे यथोचितं रसाः कविना समायोयिताः। अतः न केवलम् अयं लक्ष्मीस्वयंवरः रूपकविशेषस्य समवकारस्य आदर्शमात्रम् अपितु सकलसाहित्यगुणोपेतं काव्यम् अपि अस्ति इति स्पष्टं भवति। काव्यासास्य वैशिष्ट्येन सह आदर्शसमवकारत्वम् अपि विद्यते।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. लक्ष्मीस्वयंवरसमवकारः - आर् राघवेन्द्रराओ - प्राच्यविद्यासंशोधनालयः - मैसूर - 1987।
2. साहित्यदर्पणः - आचार्यः कृष्णमोहनशास्त्री - चौखम्बा संस्कृत संस्थान - वाराणसी - 2018।
3. ध्वन्यालोकः - आचार्यजगन्नाथपाठकः - चौखम्बा विद्याभवन - वाराणसी - 2014।
4. काव्यप्रकाश - रामानन्द आचार्य - संस्कृत पुस्तक भाण्डार - कलिकाता - 1998।
5. भरतनाट्यशास्त्र - डः सुरेशचन्द्र वन्योपाध्याय - नवपत्र प्रकाशन - कलिकाता - 2018।
6. दशरूपक - डः सीतानाथ आचार्य - संस्कृत पुस्तक भाण्डार - कलिकाता - 2016।
7. उपनिषद् - गीताप्रेस - गोरक्षपुर - 2013।
8. मूल श्रीमद्भारतमीयारमायणम् - गीताप्रेस - गोरक्षपुर - 2014।

SEND PAPER FOR NEXT ISSUE BY-15-09-2022

ONLY THROUGH- <https://forms.gle/P16UL4nsgAgE75Cd9>

CONTACT- +91 945-9456-822